विषय सूची

नं०	लेख	लेखक	पृष्ठ
१.	वेदोपदेश		३५३
२.	भगवद्भक्ति [ले० श्री स्वामी भोले बाबा जी		३५४
३.	महात्माशाह जलाल उद्दीन (ले० श्री यमुना प्रसाद जी श्री वास्तव		३६३
४.	तृषित पथिक (ले० प्रेम पथ पथिक		३६६
५.	प्रेम उदय होने के लक्षण (ले० भक्तराज श्री मथुरा प्रसाद जी जयपुर		३६७
६.	हरिदासी (ले० श्री प्रभुदत्त जी ब्रह्मचारी		३७०
७.	योग साधन (ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी		३७६
८.	श्रुतिसार		३८०
९.	भजन		३८३

REG DNo. L 2077

भक्ति प्रेस में मिलने वाली पुस्तकें।

१.	भगवद्गीता संस्कृत तथा भाषा टीका सहिता	मूल्य	॥=)
२.	भगवद्गीता दशम अध्याय पर्यन्त ...	,,	।=)
३.	गीता मूल (मोटा टाइप)	मूल्य नित्य पाठ	
४.	वेदोपनिषद्		।)
५.	अष्टोत्तरशतमन्त्रमाला	,,	।)
६	ज्ञानधर्मोपदेश	,,	।।)
७.	भक्ति ज्ञान योग संग्रह	,,	=)॥
८.	सत्य शब्द संग्रह (गुटका)	,,	।)
९.	सत्य शब्द संग्रह	,,	॥=)
१०.	शब्द सदाचार संग्रह	,,	।।)
११.	शब्द सार संग्रह	,,	।)
१२.	शब्दसंग्रह	,,	।॥)
१३.	सारसंग्रह	,,	।)
१४.	भाषा फक्किका प्रकाश	,,	।=)
१५.	मनुस्मृति सार	,,	=।)
१६.	भक्ति चिन्तामणि	,,	।=)
१७.	भगवद्भक्तांक	,,	॥=)
१८.	भगवदंक	,,	॥।)
१९.	गवांक	,,	१।)
२०.	महात्मांक	,,	१)

नोटः-एक रुपये से कम मूल्य की पुस्तक मंगाने वालों को डाक महसूल सहित टिकट भेजने चाहियें।

मिलने का पताः-

श्री भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

मुद्रक तथा प्रकाशक ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी "भक्ति प्रेस" भगवद्भक्ति आश्रम, रेवाड़ी।

जनता में भगवद्भक्ति भाव को जाग्रत करने वाली सचित्र मासिक पत्रिका।

वर्ष ७ | श्री भगवद्भक्ति आश्रम रेवाड़ी, भाद्रपद पूर्णिमा, अगस्त १९३३ | अंक १२ पूर्ण संख्या ८४

वेदोपदेश

अमित्र सेनां मघवन्नस्मां ऋतुयतीमभि।
उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति॥

हे शत्रु नाशक इन्द्र! और अग्नि! तुम दोनों हमारे प्रति शत्रुता करने वाली शत्रु सेना को भस्म करदो॥

वि रक्षो वि मृधो जहि वि वृत्रस्य हनू रुज।
वि मन्युमिन्द्र वृत्रहन्नमित्रस्याभिदासतः॥

हे इन्द्र! राक्षस जाति का विनाश करो, संग्राम करने वाले शत्रुओं का विनाश करो, हमारी उन्नति को रोकने वाले असुर के कपोलों को तोड़ो। हे इन्द्र! हमारी भारी हानि करने वाले शत्रु के क्रोध को भी विनष्ट करो॥

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः ।
यो अस्मानभिदासत्यधरं गमया तमः ॥

हे इन्द्र ! हमारे संग्रामकारी शत्रुओं का विनाश करो। युद्ध करने के लिये अपनी सेनाओं को चाहते हुये शत्रुओं को भी नीचा करके लौटाओ जो शत्रु हमको चारों ओर से क्षीण करना चाहता है उसको निकृष्ट अंधकार में पहुंचाओ।

अंधा अमित्रा भवताशीर्षाणोऽहय इव ।
तेषां वो अग्निनुन्नानामिन्द्रो हन्तु वरं वरम् ॥

हे शत्रुओ ! तुम शिर कटे हुवे सर्पों के समान अन्धे होजाओ। अग्नि के भस्मीभूत किये हुवे तुम शत्रुओं में से श्रेष्ठ श्रेष्ठ को इन्द्र नष्ट करै।

यो नः स्वोऽरणो यश्च निष्ठ्यो जिघांसति ।
देवास्तं सर्वे धूर्वन्तु ब्रह्म वर्म ममान्तरं शर्म वर्म ममान्तरम् ॥

जो ज्ञाति वाला हमसे प्रेम भाव और जो छुप कर दूरसे ही हमारी हिंसा करना चाहता है उसको सब देवता नष्ट करें मन्त्र मेरा बाणों को रोकने वाला कवच है : कल्याणमय कवच मेरा रक्षक है ॥

भगवद्भक्ति

(ले० श्रीस्वामी भोले बाबा जी

कथा हरिदास जी की।

स्वामी हरिदास जी सब शृंगार उपासकों में शिरोमणि थे। उपासना में जैसी इनकी दृढ़ धारण थी, उसका वर्णन नहीं हो सक्ता, अपने समय में अद्वैत थे। सखी भावना से अनुक्षण प्रिया प्रियतम के सुखसमाज और नित्य विहारमें मिले रहते थे और प्रिया प्रियतम, कुञ्जबिहारी राधा-रमण, राधाकृष्ण नाम इनकी जिह्वा पर रहता था। भक्ति का प्रताप ऐसा था कि देश के राजा दर्शन की आशा करके द्वार पर रहते थे। भगवत् भोग लगाने के पीछे मयूर और बन्दर इत्यादि को देखते, तो बड़ी प्रीति से भोजन कराते, इस भाव से कि नट नागर महाराज उनसे खेल और दिल्लगी करते

हैं। उनके कीर्तन और उनकी गान विद्या के संमुख गंधर्व भी लज्जित होते थे।

एक दिन कोई सेवक स्वामी जी के निमित्त अति उत्तम विष्णु तैल अर्थात् अतर बड़े परिश्रम से लाया। उस समय स्वामी जी यमुना के पुलिन में बैठे थे, उन्होंने शीशी लेकर सब अतर उस रेत में डाल दिया। उस सेवक को बड़ा दुःख हुआ और मन में कहने लगा कि स्वामी जी ने इस अतर का गुण और मूल्य न जाना। स्वामी जी उसके मन की जान कर कहने लगे कि बिहारी जी महाराज के दर्शन कर आओ। वह पुरुष जब मन्दिर में आया, तो सारा मन्दिर सुगन्ध की लपट से भरा पाया और जब उसने बिहारी जी के दर्शन किये तो भगवत् की पोशाक शिर से पाँव तक सब अतर में भीगी देखी, तब तो उसे विश्वास हुआ और वह अपनी अज्ञानता से लज्जित हुआ। अतर की सब शीशी भगवत् पर डालने का हेतु यह था कि हरिदास जी ध्यान में भगवत् से होली खेल रहे थे, भगवत् ने हरिदास जी पर रंग और गुलाल डाला, स्वामी जी के हाथ में उस घड़ी यह अतर की शीशी आगयी, रंग की जगह उस शीशी के अतर को भगवत् के ऊपर डाल दिया।

एक बार एक पुरुष स्वामी जी के पास सेवक होने को आया, उसने पारसमणि भेंट की, स्वामी जी ने जाना कि इसको पारसमणि बहुत प्यारी है। जब तक उसमें से इसकी प्रीति न जायगी, तब तक प्रिया प्रियतम में प्रीति नहीं होगी, इसलिये उसको आज्ञा दी कि यह पारसमणि यमुनाजी में डाल दे। उसने आज्ञा के अनुसार उस मणि को यमुना में डाल दिया, परन्तु मन में यह शोक रहता था कि यदि वह पारस रहता, तो साधु सेवा और भगवत् के शृंगार की सामग्री की तैयारी अच्छे प्रकार होती। स्वामी जी ने देखा कि अभी उस पत्थर की प्रीति नहीं गयी है, इस लिये उसको एक दिन अपने साथ बन में ले गये और हजारों पारस पाषाण दिखला कर कहने लगे कि जितने त्रिलोकी के ऐश्वर्य हैं और जितनी बाहर और भीतर के स्वाद की चाहना है, सब भगवत् प्राप्ति के पन्थ के ठग हैं और जब तक सब ओर से प्रीति दूर करके भगवच्चरणों में मन नहीं लगेगा तबतक भगवत् का परमानन्द प्राप्त नहीं होगा, इसलिये सब ओर से मन को खैंच कर भगवत् में लगाना चाहिये और यदि पारसपाषाण प्यारा है, तो जितने तुझको चाहियें, उतने उठाले। सेवक चरणों में पड़ा और मन को एकाग्र करके भगवत् के भजन स्मरण में लवलीन हुआ।

एक बार अकबर बादशाह ने तानसेन से पूछा कि गानविद्या का तुम्हारा गुरु कौन है? तानसेन ने स्वामी हरिदास जी को अपना गुरु बताया। बादशाह को स्वामी जी के दर्शन की बहुत बड़ी उत्कण्ठा हुई और वह तानसेन के साथ तानपूरा लेकर दर्शन करने को आया। तानसेन ने एक पद गाया और जान बूझ कर दो एक जगह तालस्वर में अशुद्धि कर दी। स्वामी जी ने तानपूरा लेकर आप उस पद को गाया। उसको सुन कर जितने सुनने वाले थे, सब भगवत् स्वरूप में लय हो गये। जब बादशाह डेरे पर आया, तब उसने उसी पद के गाने की तानसेन को आज्ञा दी। तानसेन ने पद गाया तो सही, परन्तु स्वामी जी के मुख से जो रस आया था, वह रस उस को न मिला। बादशाह ने इसका कारण तानसेन से पूछा, तो उसने उत्तर दिया कि स्वामी जी तो उसके सामने गाते हैं, जो सब का स्वामी और पालन करने वाला है और मैं तुम्हारे सामने गाता हूं। बादशाह ने यह

उसका वचन स्वीकार कर लिया। विदा के समय बादशाह ने स्वामी जी से विनय किया कि कुछ सेवा की मुझे आज्ञा दो। स्वामी जी ने कहा कि कुछ प्रयोजन नहीं है। जब बादशाह ने बहुत हठ की, तो स्वामी जी ने दिव्य व्रज भूमि दिव्य नेत्रों से बादशाह को दिखलायी, इसका वृत्तांत धाम निष्ठा में आ चुका है। बादशाह ने चरणों में गिरकर प्रार्थना की कि यद्यपि मैं किसी सेवा के योग्य नहीं हूं, तो भी कुछ स्वल्प सेवा के निमित्त आज्ञा दो, तो मैं कृतार्थ हो जाऊं और अपने को धन्यभाग्य समझूं। स्वामी जी ने कहा कि तो बन्दरों के निमित्त कुछ चना पहुंचता रहे, दूसरे व्रजभूमि के वृक्ष और शाखा कोई काटने न पावे, तीसरे तुम फिर कभी हमारे पास न आना। बादशाह ने आज्ञा का पालन किया।

कुं०—पारस पत्थर तुच्छ है, शिक्षा दी हरिदास।
भगवत का जो दास हो, कुछ ना रक्खे पास॥
कुछ ना रक्खे पास, सर्व से नाता तोड़े।
करे कृष्ण गुण गान, चित्त भगवत में जोड़े॥
भोला! माया छोड़, कृष्ण भज अन्य हट सुख कर।
तुच्छ जगत के भोग, तुच्छ है पारस पत्थर॥

कथा रत्नावली जी की

रत्नावली जी भगवद्भक्तों में राजा हुई हैं। भगवत् कथा, कीर्तन, सत्संग, उत्साह और भगवत् शृंगार में अनुक्षण लवलीन रहती थीं। पति के स्नेह का इनको तनिक चिन्तन न था, भगवत् प्रीति और भक्ति को मुख्य समझ कर अपने विश्वास से चलायमान न हुई, अपने प्रेम और भक्ति को अच्छे प्रकार निबाहा। सच मुच अन्धेरे घर की चांदनी थी। आमेर के अधिपति राजा मानसिंह के छोटे भाई माधवसिंह की रानी थीं। भगवद्भक्ति में पगी हुई एक सहेली नवलकिशोर, नन्दकिशोर व्रजचन्द, मनमोहन, बिहारी जी इत्यादि भगवत् के नाम कह कर प्रेम से आंखों में जल भर लाती थी और प्रसन्न हुआ करती थी। उसके मुख से भगवत् के नाम सुन कर रानी जी को स्नेह उत्पन्न हो आया और उन्होंने सहेली से पूछा कि बारम्बार किसके नाम लिया करती है, जो नाम मेरे मन को बल से अपनी ओर खैंचते हैं। सहेली ने उत्तर दिया कि तुम क्या पूछती हो, अपने सुख सुहाग में लवलीन रहो, भगवद्भक्तों की कृपा से यह अनमोल रत्न मुझको प्राप्त हुआ है। यह सुन कर रानी जी को भगवत् में और भी अधिक प्रेम उत्पन्न हुआ और वे सहेली से पूछने लगी कि मुझे भी किसी प्रकार वह मन मोहन महाराज मिलेंगे? रानी जी का प्रेम देख कर सहेली ने उनको भगवत् के चरित्र सुनाये और रसिक और शृंगार के उपासकों की कथायें भी सुनायीं।

रानी जी ने उस सहेली का सेवा टहल करना छुड़ा दिया, गुरु के सदृश उसको समझती और बहुत ही उसका सत्कार करने लगीं। सहेली दिन रात भगवच्चरित्र सुनाया करती। जब रानी जी का मन अच्छे प्रकार भगवच्चरित्रों में लग गया, तो उनको दर्शनों की चाहना हुई और वे सहेली से कहने लगीं कि कोई ऐसा उपाय करना चाहिये कि जिससे भगवत् के दर्शन हों और प्राण सुखी रहें, क्योंकि वह मनमोहन मन में समा गया है। सहेली ने कहा कि उसके दर्शन बहुत कठिन हैं, हजारों ऋषीश्वर घर बार राज ऐश्वर्य छोड़ कर धूल में लोटते हैं, फिर भी दर्शन नहीं पाते परन्तु प्रेम से वह मिलता है, इसलिये तुम भक्ति और भाव से भगवत् सेवा अंगीकार करो और शृंगार और रागभोग में लवलीन रहा करो।

रानी जी ने नीलमणि का भगवत् का स्वरूप विराजमान किया और बड़ी भक्ति और भाव से सेवा में लीन होकर मान्ति २ के शृंगार और राग भोग और नाना प्रकार के लाड़ लड़ाना आरम्भ किया। थोड़े दिनों में वे उस पदवी को पहुंच गयी कि स्वप्न में भगवत् से बात चीत हुआ करती। निस्सन्देह योग, यज्ञ, जप, तप, दान इत्यादि करोड़ों उपायों से प्रेम की राह निराली है। पीछे रानी की यह कांक्षा हुई कि भगवत् के साक्षात् दर्शन हों, उसी सहेली से उन्होंने अपने मन की बात कही, तो उसने उत्तर दिया कि अपने महल के निकट एक मकान बनवाओ और चारों ओर अपने मनुष्य सावधान कर दो कि जो कोई भगवद्भक्त साधु आया करें, उनको लाकर उस मकान में टिकाया करें, भोजन इत्यादि की सेवा भले प्रकार हुआ करे और तुम परदे में बैठ कर उनके दर्शन किया करो इस उपाय से विश्वास है कि ब्रजकिशोर महाराज के दर्शन हो जावेंगे, रानी जी ने वैसा ही सब किया और साधु सेवा में विरहिन और मतवालियों के समान दिन काटने लगीं।

एक बार ब्रजभूमि के रहने वाले साधु आ गये, जो युगल किशोर महाराज के रंग में रंगे हुए थे। उनके दर्शन और बातचीत से रानी चकित हो गयीं और सहेली से कहने लगीं कि इस शरीर में वह कौन अंग है कि जिसकी लज्जा से सत्संग और साधु सेवा में व्यवधान पड़ता है, मेरे देखने में सब अंग बराबर है, भगवत् के स्वरूप के रससे परम आनन्द के रस में मग्न होना, यही सार है और सब असार और तुच्छ है, यह कह कर जहां भगवद्भक्त थे, वहाँ को चलने लगीं। सहेली ने मने भी किया परन्तु न मानी और आकर चरण पकड़ करके, बड़ी दीनता और अधीनतापूर्वक अपने हाथ से भोजन कराने और सेवा करने का मनोरथ करके विनय किया कि जो आज्ञा हो, सो करें। उस समय के रानी जी के प्रेम की दशा लिखने और वर्णन करने में नहीं आ सकी, आ भी कैसे सकी है, प्रेम में नियम नहीं रहता, भगवत् प्रसाद का सोने का थाल अपने हाथ में लेकर सब को भोजन कराया, पान दिया और चरणों में पड़ कर दण्डवत किया। हरिभक्त रानी की यह सेवा और ऐसा प्रेम देख कर प्रेम से विह्वल हो गये।

जब रानी ने सब परदा और संकोच उठा दिया, तो नगर में शोर हो गया और लोग देखने को आये। महल पर मुसद्दी रहता था, उसने राजा को सब वृत्तान्त लिखा कि रानी जी ने निर्भय हो कर सब लज्जा दूर करदी है और वे मुण्डी अर्थात् वैरागियों के साथ बैठती हैं। राजा ने जब पत्र पढ़ा और हलकारे की जबानी सब वृत्तान्त सुना, तो वह जल बल कर भस्म हो गया। संयोगवश रत्नावली के पेट से जन्मा हुआ कुंवर प्रेम सिंह अपने पिता को राम २ करने इस स्वरूप से आया कि भाल पर तिलक था और गले में कण्ठी और माला थी। जिस समय कुंवर ने आकर राम २ की तो माधवसिंह उसको मुंडी का बेटा कह कर महल में चला गया। प्रेमसिंह को अपने बाप के क्रोध करने से चिन्ता उत्पन्न हुई और उसने लोगों से कारण पूछा सब समझने के पीछे विचार किया कि यदि हम साधु हैं तो इससे अच्छा और क्या है, हमको भगवद्भक्ति अंगीकार करनी चाहिये।

ऐसा विचार करके प्रेमसिंह ने अपनी माता को लिख भेजा कि आज राजा ने सभा में मुझे मुंडी का कहा है, यदि तुम्हारी भगवच्चरणों में सच्ची प्रीति है, तो उसको सत्य करना चाहिये और मृत्यु को शिर पर पहुंचा जान कर किसी

प्रकार का शोच करना योग्य नहीं है। रानी ने वह पत्री पढ़ी, तो भगवद्भक्ति के रंग में रंगीन होकर उसी घड़ी अतर फुलेल से भीजे हुए शिरके केश दूर कर दिये और पहले साधुओं को भोजन इत्यादि सेवा करके महलों में चली जाती थीं, उस दिन से महल का जाना बन्द किया, साधु सेवा के स्थान में रहने लगीं और राजा की ओर से जो कुछ खर्च के निमित्त बन्धा था, उसका लेना छोड़ दिया और अपने पुत्र प्रेमसिंह को लिख लेजा कि आज मुंडी हो गयी है, तुम आनन्द से रहो।

यह समाचार पाकर कुँवर प्रेमसिंह ने बहुत आनन्दित होकर लोगों को इनाम दिया और नौबत बजवाई। राजा माधव सिंह ने लोगों से पूछा कि आज कुँवर प्रेमसिंह को किस बात की खुशी है, तो लोगों ने कहा कि पहले तो रानी जी ने मुँडी का स्वांग बना रक्खा था, अब आपने कुँवर प्रेमसिंह को मुंडी का जो कहा, तो रानी जी शिर के केश दूर करके सच्ची मुंडी हो गयी हैं, राजा यह सुन कर महा क्रोध में भर कर कुंवर और उसकी माता का घातक शत्रु हो गया और अस्त्र शस्त्र बांध कर फौज लेकर कुँवर के मारने के निमित्त सवार हुआ। कुँवर ने जो यह वृत्तान्त सुना, तो वह भी युद्ध पर आरूढ़ हो गया और मारकाट का संयोग आ पहुंचा। राज मंत्रियों ने राजा को समझाया कि बेटे के मारने को कमर बांधनी उचित नहीं है, संसार में बड़ा अपयश होगा और उधर कुँवर प्रेमसिंह को समझाया, तो कुँवर ने उत्तर दिया कि संसार के विषय भोगों के लिये हजारों लाखों शरीर धारण किये और त्याग दिये, यदि एक बार भगवत् की राह में यह तन जाय, तो इससे दूसरा क्या उत्तम है? राज मंत्रियों ने चरण पकड़ लिये और विनय और प्रार्थना की तब यह ठहरी कि यदि माधव सिंह कमर खोल कर घर को लौट जाय, तो हम को भी बिना प्रयोजन युद्ध करना अंगीकार नहीं है। ऐसा ही हुआ।

एक दिन राजा ने मंत्रियों से मंत्र किया कि रानी ने हमारी नाक काट ली, ऐसी स्त्री के वध करने में कुछ पाप नहीं है, इसलिये वध करना चाहिये। एक बुद्धिमान् ने मन्त्र दिया कि तलवार इत्यादि से मारना उचित नहीं है, जहाँ रानी रहती हैं, वहां नाहर छुड़वा दो, वह रानी को मार देगा। सब सहमत हुए और प्रभात को नाहर छोड़ दिया गया। रानी जी भगवत् सेवा करके उठी, भगवत् रूप के प्रेम का जल उनकी आखों में था। सहेली ने कहा कि देखो, नाहर आया। रानी जी ने देख कर कहा कि यहाँ नाहर का क्या काम है। नृसिंह जी पधारे हैं, यह कह कर अत्यन्त भक्ति भाव से संमुख आकर दण्डवत् करके कहने लगीं कि आज मेरे भाग्य धन्य हैं, जो दर्शन दिये, भगवत् ने रानी का शुद्ध भाव देख कर उस नाहर में ही अपना नृसिंह रूप दिखाया।

रानी जी ने नृसिंह जी का पूजन किया, फूल, माला इत्यादि अर्पण करके आरती उतारी। भगवत् ने विचारा कि पूजा तो कराली परन्तु नृसिंह का काम भी तो करना चाहिये। ऐसा विचार कर जैसे नृसिंह जी हिरण्यकशिपु के मारने के समय खम्भे में से भयंकर रूप से प्रकट हुए थे, इसी प्रकार भगवान मन्दिर से बाहर आये और जो लोग विमुख थे, उनको मार कर निकल गये।

माधव सिंह को यह सब वृत्तान्त सुनने में आया और यह भी सुना कि रानी ज्यों की त्यों भजन में मग्न है, तब उसे विश्वास हुआ, आधीन होकर आकर, भूमि में गिर कर उसने साष्टांग दण्डवत् की। सहेली ने विनय किया कि राजा जी

दण्डवत् करते हैं। रानी जी ने कहा कि लालजी महाराज को दंडवत् करें। राजा ने विनय किया कि एक निगाह देखना चाहिये। रानी जी ने उत्तर दिया कि ये आंखें एक ओर लगी हैं, दूसरी ओर निगाह नहीं हो सकी। राजा ने हाथ जोड़ कर फिर विनय किया कि राज्य और खजाना सब आप का है, जो मन में आवे, सो करो। रानी जी ने कुछ उत्तर नहीं दिया, भगवद्भजन में लगी रहीं।

एक बार राजा मानसिंह और माधवसिंह दोनों एक बड़ी गहरी नदी के पार जा रहे थे। नाव डूबने लगी और मल्लाह बेहोश हो गये। दोनों घबराये और राजा मानसिंह ने माधवसिंह से कहा कि अब क्या उपाय करना चाहिये। माधवसिंह ने रानी की भक्ति का सब वृत्तान्त कहा और फिर रानी जी का ध्यान किया। उसी घड़ी नाव किनारे पर लग गयी और दोनों का मानो नया जन्म हुआ। राजा मानसिंह को रानी जी के दर्शन की बड़ी चाह हुई, जब वे आये तो पहिले रानी जी के दर्शन को गये, दीनता और अधीनता से विनती करी और मन में दृढ़ विश्वास युक्त हुए।

कुं—रानी रत्नावली की, कथा प्रेम से युक्त।
पढ़ सुन कर हरि प्रेम में, कौन न हो संयुक्त॥
कौन न हो संयुक्त, प्रेम भगवत् में नाई।
हरि चरणों में प्रीति बढ़े दिन रात सवाई॥
भोला! भज हरि सार, छोड़ संसार कहानी।
राजापति कूं छोड़, हुई वैरागिन रानी॥

कथा निषाद की।

भीलों के राजा निषाद की कथा सब रामायणों में विस्तार से लिखी है, यहां संक्षेप से कहता हूं। जब दशरथ महाराज की आज्ञा से श्रीरघुनन्दन महाराज बन को गये तब शृंगवेर पुर में, जिसको आज कल सीरौर कहते हैं, गुह नामा निषाद थे, जब रघुनन्दन महाराज वहाँ पहुंचे, तो निषाद स्वामी के आगमन का समाचार सुनते ही भेंट लेकर आये और रूप अनूप और छवि माधुरी का दर्शन करके मन और प्राण से आसक्त होगये और उसी घड़ी से सिवाय रूप और दर्शन के उनको अपने विराने की कुछ सुधि न रही। जब महाराज निषाद को विदा करके चित्रकूट चले गये, तो निषाद बेसुधि बुधि होकर उसी रूप के ध्यान में मग्न रहने लगे। जब भरत जी रघुनन्दन महाराज से मिलने के निमित्त चित्रकूट को चले और निषाद को समाचार पहुंचे, तो उनको सन्देह हुआ कि मेरे स्वामी और परम प्रियतम से लड़ने के हेतु यह सेना जाती है, ऐसा समझ कर प्राण देने को उद्यत हो गये और उस भयंकर सेना का उनको कुछ भय न हुआ। पश्चात् भरत जी का निष्कपट भाव जान कर वे भरत जी से मिले और चित्रकूट तक साथ चले गये। जब वहां से लौट कर आये, तो भगवत् के वियोग से ऐसे विकल और बेचैन हुए और इतने रोये कि आंखों से रुधिर बहने लगा। पश्चात् मन में विचार करने लगे कि जल के जन्तु मीन इत्यादि मुझ से हजार गुना अच्छे हैं कि, अपने प्राण प्रियतम से बिछड़ते ही मर जाते हैं।

फिर दर्शन मिलने की आशा से प्राण नहीं त्यागे परन्तु यह न हुआ कि इन आंखों से सिवाय उस रूप अनूप के और भी कुछ देखते। आंखें बन्द करके उसी रूप के चिन्तवन और ध्यान में रहे। चौदह वर्ष पीछे जब रघुनन्दन महाराज आये, तो विश्वास न आया! कहने लगे कि ऐसे मेरे भाग्य कहां हैं कि फिर भी इन आंखों से उस रूप को देखूं। श्रीरघुनन्दन महाराज अपार प्रीति देख कर

आप आये और उठा कर अपनी छाती से लगा कर कुशल प्रश्न पूछने लगे। उस घड़ी निषाद ने आंखें खोलीं और परम प्रियतम के दर्शन करके अपने को कृतार्थ माना।

दो०—भोला! हरि में प्रेम कर, जैसे किया निषाद॥
तो निश्चय कल्याण हो, इसमें नहीं विवाद॥

कथा विल्वमङ्गल की।

विल्वमंगल जी श्रीकृष्ण स्वामी के कृपापात्र, आनन्द स्वरूप परम भागवत थे। इन्होंने करुणामृत गोविन्दमाधव ग्रन्थ और स्फुट स्तोत्र संस्कृत में ऐसे रचे कि रसिक भक्तों का हार और माला के सदृश हैं। चिन्तामणी का संग पाकर इन्होंने व्रज सुन्दरियों के विहार और परम आनन्द का वर्णन किया। दक्षिणदेश में कृष्ण वेण नदी के निकटके रहने वाले थे और चिन्तामणि नामकी वेश्या के प्रेम में ऐसे आसक्त थे कि संसार को लज्जा शरम छोड़कर दिनरात उसी के प्रेम में फंसे हुए उसी के घर रहा करते थे, जाति के ब्राह्मण थे, पिता के श्राद्ध के दिन कर्म करते और ब्राह्मण जिमाते दिन थोड़ा रहगया, विकल होकर वेश्या के घर को चलदिये।

वेश्या नदी के उस पार रहती थी। जब यह नदी पर पहुंचे, तो नदी बाढ़ पर थी, नाव इत्यादि उतरने का सामान कुछ न था। यह अत्यन्त बेचैन हुए और अपने प्रेमी के बिना जीना व्यर्थ समझ कर नदी में कूद पड़े. अपने पराये की कुछ सुधि न थी, उसी वेश्या के मिलने का ध्यान था। जब डूबने लगे, तो एक बहते हुए मृतक को पकड़ लिया, प्यारे की भेजी हुई नाव समझ कर उस पर चढ़ लिये और किनारे पर जा पहुंचे। वहां से गिरते पड़ते वेग से उस वेश्या के द्वार पर पहुंचे। आधी रात थी, द्वार बन्द था, भीतर जाने की चिंता में हुए, संयोगवश एक सर्प लटक रहा था, समझे कि प्यारी ने चढ़ने के लिये रस्सी लटका दी है, उसको पकड़ कर मकान की छत पर चढ़ गये और वहां से जब उतरने को राह नहीं पायी, तो आँगन में कूद पड़े। शब्द सुन कर वेश्या और उसके घर के लोग जगे, दीपक बाल कर देखा तो बिल्वमंगल जी हैं, स्नान कराया, सूखे वस्त्र पहिनाये और पूछा कि किस प्रकार आये। उत्तर दिया कि तुमने नदी पर नाव भेज दी थी और द्वार पर डोर लटका रक्खी थी, उसी के सहारे से आया हूं। वेश्या ने छत पर जाकर देखा, तो अजगर लटक रहा था। वेश्या क्रोध करके कहने लगी कि जिस प्रकार मेरे हड्डी मांस के शरीर पर मन लगाया है, इसी प्रकार शोभाधाम, श्याम सुन्दर व्रज नागर से मन लगाते तो संसार समुद्र से पार हो जाते और दोनों लोक शुद्ध हो जाते। मैं तो प्रभात ही से युगल किशोर महाराज का स्मरण भजन करूंगी, तुम्हारे जी में आवे सो तुम करो।

बिल्वमंगल जी को यह बात ऐसी लगी कि हिये की आखें खुल गयीं, श्री व्रजचन्द की रूपमाधुरी ने तुरन्त हृदय में प्रकाश किया और उसी घड़ी रूपमाधुरी का ऐसा मनोवाञ्छित रस पाया कि परम आनन्द में मग्न हो गये। वह रात तो भगवच्चरित्र, वृन्दावन की कुञ्ज और शोभा के कीर्तन में व्यतीत हुयी, प्रभात होते ही दोनों ने अपनी २ राह ली।

बिल्वमंगल जी के मन में परम शोभा धाम का स्वरूप था, जिह्वा पर नाम था और आंखों में प्रेम का जल था, यह माध्व संप्रदाय में सोमगिरि नामक संन्यासी के सेवक हुए और भगवत् के रूप अनूप का चिन्तवन करते हुए रस चरित्र और

भगवत् ध्यान के हजारों श्लोक गुरु से पढ़े और आप भी रचे। एक वर्ष पर्यन्त गुरु की सेवा में रहे पीछे उनको श्रीवृन्दावन के दर्शन की चाह हुई। उसी प्रेम में मतवाले हो चल दिये, राह में रहे और एक नदी के किनारे पहुंचे। वहाँ बहुत सी स्त्रियां स्नान कर रहीं थीं, एक परम सुन्दरी पर आसक्त होकर अपने वेष को भूलकर उसके पीछे चल दिये। वहती अपने घर में चली गयी और बिल्वमंगल देखने की चाह में द्वार पर खड़े रहे। उस स्त्री का पति भगवद्भक्त था, एक परम भागवत को अपने द्वार पर खड़ा देख कर अपनी स्त्री से वृत्तान्त पूछने लगा। स्त्री ने आसक्त होने का और साथ आने का वृत्तान्त वर्णन किया। उस भक्त ने बिल्वमंगल जी से हाथ जोड़ कर विनय किया कि मेरे घर पधारिये कि चरण पड़ने से मेरा घर पवित्र हो और सेवा करके मैं दोनों लोकों में धन्यता को प्राप्त होऊं। यह कह कर वह इनको अपने घर ले गया, अटारी पर टिका कर बड़ी प्रीति से सेवा की और अपनी स्त्री से कहा कि शृंगार करके सब प्रकार से सेवा कर क्योंकि भगवद्भक्तों की सेवा से भगवत् बहुत शीघ्र मिलते हैं।

वह स्त्री शृंगार करके थाल में भगवत् प्रसाद लेकर बिल्वमंगल जी की सेवा में पहुंची। बिल्वमंगल जी उसे देख कर और उनकी भक्ति और साधु सेवा का विचार करके अपने मन को सावधान करके सोचने लगे कि समस्त उपाधि और बखेड़े का कारण ये मेरी आँखें हैं, यदि ये न होतीं, तो मन क्यों आसक्त होता, ऐसा विचार कर स्त्री से दो सुइयां मंगवा कर बिल्वमंगल जी ने अपनी दोनों आँखें फोड़ली। स्त्री ने काँपती हुई जाकर सब वृत्तान्त अपने पति से कहा। भक्त आया, चरण पकड़ कर अत्यन्त विकल होकर बोला कि महाराज हम से क्या अपराध हुआ कि जिससे आपको यह क्लेश हुआ। बिल्वमंगल जी ने उसे आश्वासन देकर कहा कि तुम्हारी साधुता और भक्ति में कुछ सन्देह नहीं है, हमारी साधुता में ही भेद है। उसने विनय किया कि कुछ दिन आप रहें कि सेवा करके कृतार्थ होऊं। बिल्वमंगल जी ने कहा कि तुमने ऐसी सेवा की है कि किसी से नहीं हो सकी, अब तुम भगवद्भजन करो।

यह कह कर बिल्वमंगल जी चल दिये, ऊपर की आँखें दूर करके भीतरी आंखों से वृन्दावन में पहुंचे। एक वृक्ष के नीचे बैठ कर भगवत् के ध्यान और भजन में लवलीन हुए। भगवत् ने देखा कि मेरा भक्त भूखा और प्यासा है, आप आकर महाप्रसाद भोजन कराया। जिस जगह बिल्वमंगल जी बैठे थे, वहां धूप आ गयी। भगवत् ने कहा कि चलो, तुम को छांह में बैठा दें। यह कह कर हाथ पकड़ कर घनी छाया में ले गये। बिल्वमंगल जी महा प्रसाद के भोजन, मधुर बोलन और कोमल हाथ के स्पर्शन से जान गये कि आप हैं, इसलिये हाथ नहीं छोड़ा। भगवत् ने हाथ छुड़ाने को बल किया, तो बिल्वमंगल जी ने भी बल किया, नितान्त भगवत् हाथ छुड़ा कर लम्बे हुए। बिल्वमंगल जी कहने लगे कि इस घड़ी तो आप की चतुराई चल गयी, अब मन में पकड़ता हूं, देखूंगा, कैसे भाग जाओगे। ऐसा ही किया अर्थात् सब ओर से मन को बटोर कर एक श्रीव्रजचन्द्र महाराज के रूप में ऐसा ध्यान लगाया कि जो योगियों के मन में से भी निकल जाता है, वह इन के मन में दृढ़ हो कर स्थित हुआ।

जब मन की अच्छे प्रकार दृढ़ता हो गयी, तो तन से उठ कर वृन्दावन में आये और यह इच्छा हुई कि यदि आँखें होती, तो भगवत् के

कुंज महल के विहार स्थान का और भगवत् के श्रीविग्रहों का दर्शन करते। भगवत् ने उनके मन की रुचि जान कर पहिले तो उस बाँसरी की ध्वनि सुनाई कि जो योग माया की भी माया है और परमानन्द में पूर्ण किया, फिर दोनों आँखों को प्रकाशवान् कर दिया। बिल्वमंगल जी ने वेलि, लता, कुञ्ज भगवत् के विहार स्थान के दर्शन किये और फिर भगवत् श्रीमूर्तियों का शोभायमान रूप देख कर रूप माधुरी के ध्यान की अधिक चाह और तृष्णा हुई क्योंकि उस परम अनूप रूप का सुख ऐसा नहीं है कि तृप्ति हो, किन्तु जितना हृदय में प्रकाश करता जाता है, उतनी ही अधिक तृष्णा और चाह बढ़ाता है।

बिल्वमंगल जी ने करुणामृत रस ग्रन्थ और कई स्तोत्र ऐसे २ रचे कि जिन से युगल स्वरूप में मन लग जाता है। करुणामृत ग्रन्थ के मंगला चरण में पहले चिन्तामणि का नाम और पीछे अपने गुरु का नाम जो लिखा है, इससे दो बातें जानने में आती हैं, एक तो यह कि पहिले चिन्तामणि से उपदेश हुआ, इसलिये उसको प्रथम गुरु रूप जान कर उसका नाम पहिले लिखा है, दूसरे यह कि भगवद्भक्त थोड़े से उपकार को भी बहुत मानते हैं, इसलिये यद्यपि वह वेश्या थी, फिर भी उसका उपकार इतना माना कि गुरु से भी उसको अधिक समझा, जयपद उसके निमित्त धरे।

उस बड़भागिनी चिन्तामणि ने बिल्वमंगल जी का वृत्तान्त सुना कि उनको भगवत् के दर्शन हुए हैं और वे परम भक्त होगये हैं। यह सुनकर पहले प्रेम का नाता विचार कर वह वृन्दावन में आयी। बिल्वमंगल जी ने उसे देख कर, उठ कर उसका बड़ा आदर सत्कार किया, निज प्रसाद का दूध भात का दौना भोजन के निमित्त आगे धरा। चिन्तामणि ने पूछा कि यह भोजन कहाँ से आया है। बिल्वमंगल जी ने कहा कि भगवत् ने कृपा करके यह महा प्रसाद तुम को दिया है। चिन्तामणि ने कहा कि भगवत् ने यह प्रसाद तुम को दिया है, जब मुझको हाथ से देंगे, तब लेऊंगी। यह कह कर भगवद्भजन में लगी। भगवत् ने जब चिन्तामणि की अपार प्रीति देखी, तो जिन की ब्रह्मादिक भी बड़ी चाहना से कृपा कटाक्ष देखते रहते हैं वे ही परम प्रीति और कृपा से आप दूध भात का दौना लेकर चिन्तामणि के निमित्त आये और दर्शन देकर उसे कृतार्थ किया।

चौपाई—कथा बिल्वमंगल सुख देनी।
मंगल करणि अमंगल छैनी॥
पढ़ें सुनें भावुक मन लाई।
भोला! भक्ति देय बहुराई॥

निवेदन

(रचियता बी० एल सराफ)

खोल ज्ञान आगार आज बतलादो हमको।
न्याय तर्क वेदांत ज्ञान सिखलादो हमको॥
तुमसे है यह नहीं प्रार्थना किन्तु मिश्वर।
है सत्ता जो ईश-ज्ञान की उससे प्रियवर॥
एक तुच्छ है वस्तु ज्ञान से किन्तु पूर्ण है।
हमें बतादो मार्ग ज्ञान का दास दूर है॥
तुमही से मैं सीख ईशका ध्यान आजसे।
होता हूं अब व्यग्र सत्य के स्वच्छ साज से॥
हो नहीं गुरु बिन ज्ञान जगत की सच्ची उक्ती।
परमहंस ने दी विवेक को निर्मल मुक्ती॥
तिरस्कार की दृष्टि पात मत इस पर करना।
अन्तर्यामी-ईश चरण में मुझको धरना॥

महात्मा शाह जलाल उद्दीन वसाली

(ले० श्री यमुना प्रसाद जी श्रीवास्तव)

गतांक से आगे ।

गर बदरिधा रवद व बजदए इश्क ।
रिश्तए इलफ़ता न गरदद जम ॥
अर्थात्
प्रेम यमा जो चूदई सरिता मोहि ।
एकहु तागु गुदहि को मीजे नाहि ॥

शाह साहिब किनारे खड़े होकर इधर-उधर देखने लगे। उन्होंने उस समय के दृश्य का वर्णन करते हुए कहा है:-

गयउँ काह मैं सरिता तीर ।
देखेउँ सुखद एक मति धीर ॥
चतुर मनोहर धीर निशंक ।
अंग-सुख कोमल सारंग अंक ॥
सुघर उठानि सुवासित माता ।
वय किशोर गति गज सुखदाता ॥
चितवत चोख भृकुटि धर बांके ।
नयन भरित मद मधुरस छाके ॥
कबहुं छविधुत भाव जनावें ।
कबहुं कटाक्ष कला दरसावें ॥
प्रेमिन कहे अस परै लखाई ।
मुख छवि वैदिक धर्म सुहाई ॥
मेचक कच कुंचित घुघुरारे ।
जनु इसलाम धर्म श्रुति धारे ॥
मम दिशि लखि भृकुंक सम्हारेउ ।
छवि प्रसाद जनु देन इंकारेउ ॥
चकित थकित चित भयउँ अचेता ।
सुध बुध बिसरी धर्मक-खेता ॥
नहिं जानो तिहि छिन मोहि कोही ।
को संदेश जतावउ मोही ॥
प्रियतम प्रभु तजि आन, अवि देखिय हिम कीपकनि ।
जो देखिय मतिमान, तासु प्रकरणहि जानिये ॥

महात्मा वसाली कुछ दिन स्वर्गद्वार और मणि-पर्वत पर रहे। फिर वे प्रमोद-वन को चले आये और वहीं रहने लगे।

(८)

पंडित टेकचन्द जी शाह साहिब को खोजते हुए अयोध्या जी में आये, परन्तु वे नहीं मिले। तब विवश होकर उन्होंने इस अभिप्राय से कि ख्याति होते ही जहां होंगे, आजायेंगे, रामायण की कथा वाचना आरंभ कर दिया। कथा खूब जमती थी। सहस्रों मनुष्य इकट्ठे होते थे। एक दिन जब कथा समाप्ति होचुकी और हवन के उपरान्त पूजा खड़ चुकी, तब पंडित जी ने उदास होकर कहा:-

'रंग पीले पड़गये जिनके के लिये ।
वे शाह जी आये न दम भरके लिये ॥'

इसी बीच में शाह साहिब भी आ पहुंचे। व्यासासन छू जाने के भय से उन्होंने दूर से ही पांच दाने सबके पुस्तक पर फेंक दिये। दाने चमक दार थे। पार्श्ववर्तियों ने बीन कर पंडित जी को दिये। यथार्थ में वे सोने के थे। यह देखकर लोग दंग रहगये। पंडित जी ने व्यासासन से उतर कर अभिवादन किया और अपने आने का कारण कह सुनाया। शाह साहिब ने कहा:-

"अच्छा! यहां से निबटकर प्रमोद वन में बेर के वृक्ष के नीचे आओ!"

यह कहकर शाह साहिब चले गये। पंडित जीने पोथी पत्रा बांध, श्रोताओं से विदा हो प्रमोद वन की राह ली। कुछ श्रोताओं ने पीछा किया परन्तु पंडित जी ने यह कहकर कि उनके साथ रहने से शाह साहिब के दर्शन नहीं मिलेंगे, उन्हें

लौटादिया, इसपर भी एक व्यक्ति चुपके-चुपके पीछे चला ही गया। पंडित जी ने प्रमोद वन में पहुंच बेर के वृक्ष के नीचे खोज की, परन्तु शाह साहिब नहीं मिले तब वे वहीं ठहरगये परन्तु दूसरा व्यक्ति जो पीछे-पीछे आया था, निराश होकर लौट गया। उसके जाते ही शाह साहिब बेर के वृक्ष के नीचे प्रकट हुए। पंडित जी ने हाथ जोड़कर विनती की और कहा।–

"शाहसाहिब! आपकी कृपा से पुत्र रत्न तो मिलगया अब मेरा इच्छित तीसरा वरदान दीजिये।"

शाह साहिब ने कहा:–

"अच्छा! जो कुछ फल कथा में पाया है, उसे दान करके रात्रि को इसी स्थान पर आजाओ परन्तु आज की तरह किसी और को अपने साथ मत लाना।"

(६)

पंडित जी ने उसी दिन सब कुछ दान कर-दिया। साँझ होते ही भिखारी बनकर शाह साहिब के आश्रम में पहुंचे और हाथ जोड़ विनती की:–

"मैं आपका सेवक हाज़िर हूं"

महात्मा वसाली उस समय नेत्र मूँदे हुए भगवान श्री रामचन्द्रजी की अनूप रूप राशि का असीम आनन्द लूट रहे थे। उनकी उस समय की अवस्था का वर्णन करते हुए किसी कवि ने कहा है।

तुझ में फ़ना हूं और तुझी में फ़ना रहूं।
आजाय तू नज़र तो तुझे देखता रहूं॥

महात्मा जी ने आंखें मूँदे ही मूँदे कहा।–

" हां! आगये? अच्छा, कहो?"

मामु बीमाने कूय दिल दारेम।
रुख व दुनिया बदीं नमी आरेम॥

बुल बला नेम कज़ कज़ा व क़दर।
ओफ़तादा जुदा ज़ गुलज़ारेम॥
मुर्ग़ शाले दरख़्त लाहू तेम।
गोहरें दुर्रे गंज इसरा रेम॥

शाह साहिब कहते जाते थे और पण्डित जी दुहराते जाते थे। अन्त में शाह साहिब ने कहा–

'अच्छा! अब वली अल्लाह होजा।'

"मैं आपका सेवक टेकचन्द हूं।"

"हाँ! हाँ! अच्छा, वलीराम होजा।"

अब पण्डित टेकचन्द जी भी उन्हीं की तरह मस्त होगये। उनका नाम वलीराम पड़ा। 'मामुकी मां' की तीन शैरें पढ़ कर वे फारसी और अर्बी के बड़े विद्वान् हो गये। उनका बनाया हुआ 'दीवाने वलीराम' अब भी आदर की दृष्टि से देखा जाता है।

महात्मा वसाली प्रमोद-वन में रहते थे और पण्डित वलीराम जी मणि कूट पर विचरते थे। रात्रि को जब कभी दोनों मिल जाते थे तब "खूब बन आती जो मिल बैठते दीवाने दो" वाली कहावत चरितार्थ होती थी।

कुछ दिन पश्चात महात्मा वसाली ने जीवन यात्रा समाप्त कर साकेतवास किया, उनकी समाधि उसी बेर के नीचे अब तक मौजूद है।

[१०]

'मामुकीमा' नाम की प्रसिद्ध पुस्तिका महात्मा वसाली की ही निर्माण की हुई है। आधी रात्रि के समय यह कविता अनायास ही उनके मुँह से निकल गई थी। दूसरे ही दिन लखनऊ के कील काली की मजलिस में परिज़ादा नक़ीशाह ने इसे गाकर सुनाया। लोगों ने बहुत पसन्द किया। सब जगह प्रचार हो गया यहाँ तक कि वह मकतबों में जारी हो गई और पाठशालाओं में अब भी पढ़ाई जाती है।

एक दिन मौलाना नज़ीर शाह साहिब से मिलने आये और बड़े प्रेम से वह कविता पढ़ सुनाई। शाह साहिब ने कहा, मैंने तो किसी को इसे लिखाया तक नहीं आपको कैसे प्राप्त हुई? मौलाना साहिब ने लखनऊ की कीलकाल की मज़लिस में सुन कर याद कर लेने का सम्पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया, शाह साहिब को बड़ा आश्चर्य हुआ। परन्तु अपने प्रियतम का रहस्य समझ कर वे चुप ही रहे।

एक दिन जनकपुर में स्वामी जानकी वर शरण जी के मुख से अनायास ही यह पद निकल गये थे।

चित ले गयो चुराय जुल्फों में लला॥
हम जानी वे कृपा सिन्धु हैं।
तब उनसे भई प्रीति भला॥
विरही जन को दुख उपजावन।
करत नये नये अजब कला॥
प्रीतिकता! प्रीतम बेदरदी।
छांडि हमें कित गयो चला॥

उन्होंने यह पद किसी को लिखाया भी नहीं था। परन्तु जब वे अयोध्या जी में आये तो वहां भी यही पद लोगों को गाते सुना। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ।

श्री माधवेन्द्र पुरी जी जगन्नाथ जी से लौटते समय मार्ग में गोपीनाथ जी के मन्दिर में ठहर गये। प्रसाद में उन्हें खीर भी मिली थी। उसे पाकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए। जी चाहा कि कुछ और मिलती तो पाते परन्तु संकोच के कारण मांग नहीं सके। रात्रि को श्रीगोपीनाथ जी स्वयं भण्डारा से खीर लेकर उनके पास लाये। वे अत्यन्त लज्जित हुए। अपनी जिह्वा को धिक्कार देने लगे। हाथ जोड़ प्रार्थना की।

"जीवनधन! इतना कष्ट क्यों उठाया?"

भगवान ने कहा, क्या तुमने सुना नहीं कि भगवान् श्रीकृष्ण जी ने अर्जुन से क्या कहा था:-

हम भक्तन के! भक्त हमारे।
सुन अर्जुन! परतिज्ञा मोरी॥
यह व्रत टरे न टारे।
हम भक्तन के! भक्त हमारे॥

अर्थात्:-

हमें जो प्यार करते हैं, हमारे भी प्यारे हैं।
सदा हम उनसे हारे हैं, हमारे जो सहारे हैं॥

इतना कह वे अन्तर्धान हो गये।

माधवेन्द्र पुरी जी प्रतिष्ठा के भय से रात्रि ही को वहां से भाग खड़े हुए। भोर होते ही वे दस कोस पर निकल आये। यहाँ गांव वालों को यह कहते सुना कि गोपीनाथ जी ने रात को खीर चुरा कर माधवेन्द्र पुरी जी को पवाई। उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। बंगालियों में कहावत है:-

प्रतिष्ठार भये पुरी जाय पलाइया।
पुरी प्रतिष्ठा आगे जाय गोंडाइया॥

अर्थात् जिस प्रतिष्ठा के भय से माधवेन्द्र पुरी जी भागे वह प्रतिष्ठा उनके आगे आगे दौड़ती गई।

प्रातःकाल मंदिर खुला। भगवान के वस्त्रों पर खीर देखकर सबको आश्चर्य हुआ। भगवान ने खीर की चोरी और उस चोरी का कारण प्रकट करदिया। उसी समय से उनका 'खीर चोर' नाम पड़ा।

महात्माओं के चरित्रों में ऐसी ही विचित्रताएं होती हैं। प्रियतम प्रभु के इन रहस्यों को वही समझ सकता है जो इन रहस्यों की बातें जानता है।

धन्य है महात्मा वसाली, आपको! और आपके अलौकिक प्रेम को! उस यवन काल में भी

आपने भगवान श्री रामचन्द्रजी की विमल भक्ति का आस्वादन करके हिन्दुओं की आंखें खोलदीं। बाबू हरिश्चन्द्र जी ने ठीक ही कहा है।—

इन मुसलमान हरिजनन पर, कोटिन हिन्दुन वारिए ॥

बोलो भक्त और उनके प्यारे भगवान् सियावर रामचन्द्र जी की जय! जय!! जय!!!

तृषित पथिक।

(ले० प्रेम पथ पथिक)

श्रान्त पथिक! जरा ठहरो और उस वटवृक्ष के नीचे थोड़ा विश्राम लेलो। हैं! क्या कहा? इतनी तेज प्यास! तो पानी पीकर अपनी प्यास बुझा क्यों नहीं लेते? नहीं जी तुम भूल करते हो। रास्ते में अनेक बावड़ी, तालाब और कूयें मिले फिर भी तुम कहते हो कि तुम प्यासे ही रहगये! अरे! कितने आश्चर्य की बात है। कहीं तुम्हारा दिमाग तो नहीं बिगड़ गया। कहीं तुम्हारे दिमाग में गरमी तो नहीं समागई? भला माघ का महीना और तुम प्यासे! भला बतओ तो सही यह तुम्हारा कैसा मर्ज है। पानी! पानी!! प्यासा!!! मरा! पिलादे प्रे..... हैं, हैं! कैसी बेतुकी बात कैसी आह भरी आर्तनाद! प्यारे पथिक! लो इस शीतल जल से अपनी प्यास बुझालो आओ! यह क्या? क्या कहते हो? इस जल से प्यास और भी प्रज्वलित हो जायेगी। इस जल से प्यास की ज्वाला और भी भभक उठेगी। अच्छा भैया! तुम्हीं बताओ तुम्हारी तृष्णा कैसे दूर हो। तुम्हारा यह पत्थर को भी पिघलाने वला करुण क्रन्दन कैसे दूर हो? ओहो! यह गजब!! चेतो, चेतो, पथिक जरा होश सम्हालो। भला तुम्हारी ऐसी अवस्था। यह प्यास कैसी है? पथिक जरा होश में आओ बताओ तुम्हारी यह न बुझने वाली प्यास किस वस्तु से बुझेगी।

पथिक ने कोई उत्तर नहीं दिया। फिर वही आह फिर वही व्याकुलाता। बड़ी मुश्किलों से उसने कहा।

प्यास तृष्णातुर के बुझे, थोड़ेहु जलदान।
पीछे जलभर सहस घट, और मिले न प्राण ॥

क्या कहा! तुम्हें जलदान चाहिये। आओ दुलारे पथिक! अपने मन का गूढ़ भाव खुलासे कहो! अपना गुप्त रहस्य प्रगट करो। तुम्हारी इस रहस्य पूर्ण प्यास का अर्थ कौन समझे। अब मैंने समझा, संसार के किसी भी जलाशय में शक्ति नहीं कि तुम्हारी इस प्यास को बुझा सके। भला तुम ठहरे प्रेम-प्यासे तो फिर इस जल से तुम्हारी तृप्ति हो ही कैसे सकती है! तुम्हारी प्यास तो किसी प्रेम-मतवाले से ही शान्त हो सकती है। प्रेम के दिवानों की दुनिया ही अलग होती है। उनकी गति विचित्र, उनकी चाल निराली, उनका रहन सहन बेढंगा और उनकी बातें अटपटी होती हैं तभी तो—

प्रेम दिवाने जो भये, कहैं बहकते बैन।
कबहुं मुंह हांसी छुटै, कबहुं टपकै नैन ॥

ऐ प्रेम-पथ-पथिक! थोड़ा और आगे बढ़ो वह देखो सामने एक प्रेम रंग में छका प्रेमका प्याला ढ़ाले हुये, प्रेमके नशेमें चूर, झूमता झामता चला आरहा है। जाओ, शीघ्र जाओ। उसी से तुम्हारी मुराद पूरी होगी। उसी दिवाने से तुम्हारी चिर पिपासा शान्त होगी। सचमुच यह वो बड़ी बुरी है जिसे लग जाती है प्राणों पर आपड़ती है। यह एक ऐसी बला है जो गले पड़ जाने से छुटना मुश्किल है।

प्यारे पथिक! यह तुम्हारी कैसी शोचनीय अवस्था होगई अरे तुम छव्वे होने गये थे तो फिर दूबे बन कर कैसे लौटे! क्या प्रेम करने का यही पारितोषिक है। जरा कहो तो सही बात क्या है। जरा बतलाओ तो सही मेरे बतलाये हुये वैद्यराज से तुम्हें उचित औषधि न मिली। तुम्हारी हालत तो 'ज्यों२ दवा की मर्ज बढ़ता गया' वाली होरही है। तुम्हारी दयनीय दशा पर मुझे बड़ा दर्द होता है। प्रेम-प्यासे-पथिक! कहो मैं तुम्हारी क्या सेवा करूं। आखिर कुछ कहो तो सही तुम्हारे इस मर्ज का इलाज भी है या लाइलाज मर्ज है।

पथिक ने तृपित नयनों से एक बार देखा। उसकी आखों में आह थी, तृष्णा की पुकार थी, प्रेम की अचल चाह थी और थी प्रेमी से मिलने की प्रेम-प्यास। उस दिवाने ने प्रेमका दो एक बूंद पिलाकर उसकी प्यास और भी बढ़ादी। अच्छा होता एकदम ही न पिलाया जाता। इससे तो पथिक की व्याकुलता चरम सीमा लांघ गई। इतने थोड़े से तो पथिक की प्रेम-पियास घटने के बजाय बढ़ गई। ऐ अहंकारी दिवाने! जरा होश में आ और अपने इस तड़फते हुये भाई पर जरा रहम खा। भगवान् के नाम पर दुखियों को मत सताओ, जले हुये पर नमक न छिड़को, भूले भटकों को रास्ता दिखलाना तुम्हारा कर्त्तव्य है। प्रेम-रस प्यासों को प्रेमजल पिलना तुम्हारा फर्ज है। मरीजों को दवा देकर आरोग्य करना तुम्हारा लक्ष्य है। फिर इस बिचारे पथिक ने क्या अपराध किया है। इसकी कौनसी इतनी भारी भूल है कि तुम इसकी ओर दया-दृष्टि नहीं करते। परमात्मा के नामपर ही सही, अब देर मत करो। इस दीन-हीन-पराधीन श्रान्त-क्लान्त पथिक को निहाल करदो। इसकी डूबती हुई जीवन नौका को खेकर पार लगादो। इस सूखते हुये पौधे में जल डालदो। दलदल में फंसती हुई गाड़ी में जरा जोर लगादो। यदि तुम्हारे पुरुषार्थ से किसी का बेड़ा पार लग जाये तो तुम्हारा इसमें बिगड़ता ही क्या है।

ओहो! क्या तुम वही पथिक हो! क्या मैं तुम्हें पहचानने में भूल तो नहीं कर रहा हूं? तुममें तो आकाश पाताल का अन्तर होगया है! कहां तो उस रोज प्यास के मारे जीवन आशा से निराश होगये थे और कहां आज तुम तृप्त, शान्त, प्रेम-पूर्ण और आनन्दमय दिखाई पड़ते हो। जरा कहो तो सही तुम्हें क्या कारूं का खजाना तो नहीं मिलगया! भला बोलो तो सही तुम आज इतने मग्न और प्रसन्न क्यों हो? मालूम होता है तुम अपने मंजिले मकसूद तक पहुंच गये। जान पड़ता है तुमने तलवार की धार प्रेम-पथ को अपने परिश्रम से तै कर लिया। प्रेम-प्याला पीने वालों की ऐसी ही हालत हो जाती है। उस दुनियां में पहुंचने पर संसा की उलटी धारा बहने लगती है और पथिक उसमें मज्जन कर दैहिक, दैविक और भौतिक तापों से शान्ति पा जाता है। उसके मन का मैल दूर होकर कान्ति लोक लोकान्तर में फैल जाती है और वह सत् चित् आनन्द में विलीन हो जाता है।

प्रेम उदय होने के लक्षण

गतांक से आगे

(ले० भक्तराज मुं० मथुराप्रसाद जी जयपुर)

प्रिय पाठकवृन्द! गत अंकों में शान्ति से लेकर नाम गान रुचि तक प्रेमियों के लक्षण वर्णन हो चुके। उसके अन्तर 'आसक्तिस्तद्गुणाऽख्याने' इस का निरूपण किया जाता है।

भगवान् के पतित पावनता कृपालुता दीन-बन्धुता आदि सद्गुणों के वर्णन में प्रेमी का मन आसक्त रहता है और प्रेमी ही क्या विषयी जिज्ञासु और जीवन्मुक्त ज्ञानी तीनों भगवद् गुणानुवाद में रुचि रखते हैं और जिनको इसमें रुचि नहीं वे पशु-घाती गिने जाते हैं।

निवृत्त तर्षैरुपगीयमानाद्भवौषधात् श्रोत्रमनोऽभिरामात्।
क उत्तम श्लोक गुणानुवादात्पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्

अर्थात् जिन ज्ञानी पुरुषों की वासनायें मिट चुकी हैं जैसे सनक आदि महर्षि, शुकदेव नारदादि मुनि यह सब भगवद्गुण गान ही अपना कर्तव्य मानते हैं और जिज्ञासु लोग भव रोग की औषधि तथा विषयी जन इसको मनोरञ्जक समझ कर प्रवृत्त होते हैं।

शरणागति के जो ६ अंग वर्णन किये गये हैं। उनमें गोप्तृत्व वर्णन चौथा अंग कहा गया है, गोप्तृत्व का अर्थ है रक्षकपना अर्थात् प्रभु ने गज की ग्राह से अजामिल को यम दूतों और द्रौपदी की दुःशासन से इत्यादि अनेक दुखियों की समय समय पर रक्षा की और दीन भक्तों के लिये सदा कमर बाँधे तैयार रहते हैं। उन सद्गुणों का गान करना शरणागत भक्त का धर्म है।

संसार में देखा जाता है कि जिसके साथ अत्यन्त प्यार प्रीत हो उसके गुणों का गायन और श्रवण प्रेमी को अतीव प्रिय लगता है। उसी की चर्चा सुहाती है। मजनू लैला पर आसक्त था। एक बार लैला शाहजादी साठ कोस के अन्तराय पर गई हुई थी। सांडनी सवार उसके पास कोई राजकीय सन्देश लेकर जा रहा था। मजनू को खबर पड़ गई। वो सांडनी सवार के साथ हो लिया और लैला के गुण गाता हुआ तथा विरह के दुःख रोता हुआ सवार के साथ दौड़ता हुआ ६० कोश चला गया। जब नगर आगया तो सवार अन्दर चला गया मजनू को किसी ने अन्दर नहीं जाने दिया। वो बेचारा जंगल में एक वृक्ष के नीचे जा पड़ा और थकावट के मारे दोनों पाँव ऊपर, मुख नीचा करके पड़ा रहा। प्यास अधिक होने के कारण मुँह उसका खुला था। उसी वृक्ष पर एक नाग विष उगल रहा था उस हलाहल विष की बून्दें मजनू के मुख में गिरने लगी उन्हीं से इसकी तृषा शान्त हुई।

लैला को जब मजनू के ६० कोस दौड़े आने की खबर मिली तो उसने हकीमोंसे सम्मति ली कि कोई मनुष्य इतनी दूर दौड़ कर आने पर भी किसी उपाय से जीता रह सकता है। तब हकीमों ने विचार कर कहा कि यदि ऐसे मनुष्य को वृक्ष के सहारे औंधा लटकाया जाय और काले सर्प का विष पिलाया जाय तब ही जिन्दा रह सकता है। लैला ने मजनू की खोज कराई तो उसे वृक्ष के नीचे औंधा पड़ा और नाग का विष पीते पाया, दैव ने स्वतः उसकी रक्षा करली।

धन्य है प्रेम की महिमा और धन्य ऐसा प्रेमी। ध्यान देने का स्थल है कि एक नश्वर तुच्छ शरीर पर आसक्त मजनू को अपनी प्रियतमा के गुण कथन में इस दरजे प्रीत, तो नित्य सर्वोत्तम परमात्मा के प्रेमी को अपने प्रेम पात्र के गुण गान में कैसी अभिरुचि होना चाहिये प्रभु के गुणों के श्रवन तथा कीर्तन में स्वाद भी कैसा है कि श्री शुकदेव जी जैसे विरक्त परमहंस जीवन्मुक्त महानुभाव जो तीन मुहूर्त से अधिक किसी एक स्थान पर नहीं ठैरते सात दिन बराबर एक स्थान में टिके रहकर अखंड धारा प्रवाह वत हरि कथा कहते रहे और भूक प्यास निद्रादि की बाधा उन्हें किञ्चिन्मात्र नहीं हुई। और यह तो परम तपस्वी

आत्माराम थे। परीक्षितराजा की दशा देखिये। जिसे क्षुधा, पिपासा, आलस्यनिद्रा की बात तो दूर रही मृत्यु तककी चिन्ता न रही। अमृत से भी ज्यादा गुण हरि गुणों में है। उन हरि के शुभ गुणों के आख्यान में प्रेमी की आसक्ति होनी ही चाहिये। इस अवसर पर किसी भगवत् दास हरिके शुभगुणों का वर्णन एक पद्य में किया है वह निवेदन किया जाता है।

तुम सा दयाल कोई हमने कहीं न पाया।
स्वारथ का मीत पाया जिस जिस को अजमाया॥
की द्रोपदी की रक्षा कुछ भी न पांच पति ने।
तुमने हि नाथ फौरन चीर उसका आ बढ़ाया॥
गज राज को कुटुम्बी सब छोड़ छोड़ भागे।
वो कौन था कि जिसने प्राण उसका आ बचाया॥
भाई ने लात मारी आया शरन विभीषण।
रिपु भ्रात को भी तुमने झट छाती से लगाया॥
क्या की कमी पिताने प्रहलाद सुत के वध में।
वो कौन था जो थम्भे से शेर बन के आया॥
बालक ध्रुव को घरसे बाहिर किया पिता ने।
करके अचल तुम्हीं ने की उसपै छत्र छाया॥
वर्णन करूं कहां तक प्रभुता प्रभू तुम्हारी।
गुण सुन तुम्हारे हाथों बिन मोल हूं बिकाया॥
अब तारो या न तारो भूलो न टेक अपनी।
'मथुरेश' जान लीजै हूं आपका कहाया॥

प्रभु के गुणों का पार शेष शारदा आदि निरन्तर गान करने पर भी नहीं पाते और न तृप्ति ही होती है आग्रिम पद में प्रभु की विपत सहायकता कही गई है।

हरजा हाजिर पाये, गोविन्द विपत में।
सुरपति कोप कियो ब्रज पै जब, झट रक्षा कीनी।
नटवर तब गिरवर पर कहलाये, ॥ गो०
काली नाग जब जमना घेरी, जीवन को भई विपत घनेरी।
नाग नाथ प्रभु लाये ॥ गो०
भीर परी जब पांडु सुतन में, उनकी विनय कराई रन में।
खुद रथवान कहाये ॥ गो०
दीन सुदामा के दुख टारे, नैनन जलसे चरन पखारे।
कंचन महल बिनाये ॥ गो०
नामदेव घर छान छवादी, हित कबीर के बालद लादी।
नरसी करज चुकाये ॥ गो०
भीर परी प्रहलाद पै जब जब, रक्षा करी आप प्रभु तब तब।
खम्बफाड़ प्रगटाये ॥ गो०
कंस मार जन दुख हरलीनो, मथुरा वासिन को सुख दीनो।
मथुराधीश कहाये ॥ गो०

इधर भगवत् दासों को स्वामी के गुण गान में जैसी दृढ आसक्ति होती है उधर वैसी ही प्रीति अपने गुण गायक जन में स्वामी की प्रसिद्ध है।

भक्त माल में श्री गीत गोविन्द के रचयिता जयदेव जी के चरित्र में लिखा है कि एक माली की लड़की गीत गोविन्द की अष्ट पदी गाती हुई बगीचे में फूल चुगती थी, उसके पीछे भगवान् जगदीश सुनते हुए चल रहे थे आपके चरणों में कांटे लगे पाये।

ऐसे ही सूरदास जी को प्रभु के गुणानुवाद में जितने पद रचना का संकल्प था वह पूरे न होसके, आयु समाप्त होगई। तब स्वयं भगवान् ने पद रचना करके सूर श्याम का भोग रखदिया और अपने भक्त की प्रतिज्ञा पूरी करदी।

गोस्वामी तुलसीदास जी ने विनय पत्रिका की रचना की। तब श्री रघुनाथ जी ने हनुमान जी से कहा कि तुलसीदास जी के पद हर घड़ी मेरे श्रवण में आते हैं सोते जागते खाते पीते हर घड़ी मेरे कानों पड़ते हैं उनसे पूछो क्या चाहते हैं। दर्शन

चाहते थे सो भी देदिये अब मुझे क्यों नहीं चैन लेने देते। हनुमान जीने गुसाईं जी से कहा तो प्रार्थना की कि दर्शनों से तृप्ती नहीं हुई एकबार और कृपा होनी चाहिये।

इसपर भगवान श्री रामचन्द्र जी ने चित्र कूट में दुबारा दर्शन दिये।

भक्त लोग प्रभु के गुण गाकर जो कुछ चाहते हैं प्रभु को उनकी इच्छा पूरी करनी ही पड़ती है इसीलिये प्रेमियों को उनके गुण गान में आसक्ति होती है।

इस अवसर पर यह अधम शरीर भी कुछ प्रभु की सेवा में प्रार्थना करने के लिये उत्कंठित होकर पद्य निवेदन करता है।

(१)

जरा इधर भी करम की निगाह होजाये।
तो अब में तेरी प्रभु वाह वाह होजाये॥
मिला न होगा मिलेगा न कोई मुझ सा अधम।
कि जिसके पापों से दफ्तर सियाह होजाये॥
तपा विरह में ये दिल घुल गया भी अश्कों से।
जरूर है कि तेरा सैर गाह होजाये॥
तलब में कैसा मज़ा है हो तुमको तब मालूम।
तुम्हारे दिल में अगर मेरी चाह होजाये॥
रहे न ख्वाब में भी फिक्र दीनो दुनिया की।
जिसे तुम्हारे चरन की पनाह होजाये॥
हज़ारों दिलसे फ़िदा हों तेरी अदाओं पर।
जिधर खड़ा तू हसीनों का शाह होजाये॥
इसी कदर है मेरी आरजू शहे खूबां।
वो बांकी झांकी मुझे गाह गाह होजाये॥
तुम्हारा नाम है मथुरेश जो पतित पावन।
वो तब सफल हो जो मेरा निबाह होजाये॥

(२)

नाथ चरणों से तुम्हारे मन जुदा मेरा न हो।
कोई क्षण ऐसा न हो जिसमें सनम तेरा न हो॥
हो पतित पावन तुम्हारा नाम हर दम कंठ में।
गैर का हिरदे कमल में तुम सिवा डेरा न हो॥
प्रेम की मस्ती में सूझे कुछ नहीं तेरे सिवा।
जीना है बेकार गर दर्शन पिया तेरा न हो॥
हर तरफ़ हर चीज़ में आवे नज़र जलवा तेरा।
दिल रहे रोशन कभी माया का अंधेरा न हो॥
तुझ सहित तुझही में चित हो नित लगन बढ़ती रहै
जग के राग अरु द्वेष का दिल में कभी फेरा न हो॥
आप जिस२ जा पे जब २ हों प्रगट भक्तों के काज।
हो नहीं ऐसा कहीं चरणों में ये चेरा न हो॥
तुच्छ मथुरा दास को मथुरेश ने अपना लिया।
है असंभव दुनिया में जस तेरा बहुतरा न हो॥

हरिदासी

(कहानी)

(१)

(ले० श्री प्रभुदत्त ब्रह्मचारी)

किं दुःसहं नु साधूनां विदुषां किमपेक्षितम्।
किमकार्यं कदर्याणां दुस्त्यजं किं धृतात्मनाम्॥

इस अखिल विश्व ब्रह्मांड में वे ही श्रीहरि सर्वत्र व्याप्त हैं, जिन्होंने उस सर्वान्तर्यामी प्रभु की सत्ता समझली है, जिन्होंने उस सारों के भी सारका पता पालिया है उनके लिये फिर दुःसह बात कौनसी है? वे सभी दुःखों को हंसते २ सह सकते हैं। चाह का सम्बन्ध मन से है, जिनके मन में मन मोहन की माधुरी मूरत बैठी हुई है उन्हें फिर भला अन्य किसी संसारी पदार्थों की चाह हो ही कैसे सकती है। क्यों चित्त चोर के चित्त में

बसने पर सभी चाहें चुप चाप चली जाती हैं। जिन्होंने शरीर को ही सर्वस्व मान रखा है, जो शारीरिक सुख में ही अपने जीवन की इतिश्री माने बैठे हैं और उसी को सदा स्वस्थ बनाये रहने की चिन्ता में मग्न रहते हैं ऐसे शिश्नोदर परायण क्रूर पुरुष कौनसा पाप नहीं कर सकते? अर्थात् सब कुछ कर सकते हैं। सर्वेश्वर भगवान् वासुदेव को जिन्होंने अपनी आत्मा में धारण कर लिया लक्ष्मी पति के चरणों में जिन्होंने अपना सर्वस्व समर्पण कर दिया है, वे फिर भला किस चीज का त्याग नहीं कर सकते?

उसने किशोरावस्था को पार करके अभी अभी यौवनावस्था में पदार्पण किया था। उसके शरीर का रंग न काला था न गोरा, गेहुंए रंग के शरीर में एक दिव्य प्रकाश छाया हुआ था। सिर के बाल बढ़े हुए थे, किन्तु वे कंघी से काढ़े नहीं गये थे, इसीलिये स्थान स्थान पर चिकट कर उनकी लटें बन गई थीं। ओठों के ऊपर का भाग काला हो गया जो यौवन के उभार की सूचना दे रहा था। चिरकाल से शीतोष्ण सहन करने के कारण शरीर सबल और सुडौल बन गया था। गंगा जी के उस पार एक टीले पर उसकी छोटी सी गुफा थी उसी में वह दिन रात्रि पड़ा रहता था। केवल दोपहर के समय वह भिक्षा के लिये अपनी गुफा से निकल कर पास की बस्ती में जाता और १०।५ घरों से क्षुधा निवारणार्थ कुछ ले आता और उसे भगवती भागीरथी के तट पर बैठ कर भगवदार्पण पूर्वक पालेता। माता के अमृत तुल्य पय को पान करके वह अपने फिर उसी गोरख धन्धे में लग जाता। उसे न दीन की चिंता थी न दुनियाँ की वह अपनी धुनि का पक्का था। ५० लाख नामों का उसे गणना पूर्वक दिन रात्रि जप अवश्य कर लेना चाहिये। इस नियम में गड़बड़ी नहीं होने पाती थी, चाहे भोजन और शयन में गड़बड़ी हो जाय।

वह किसी से बातें नहीं करता था। हर समय उसके मुख में से सुमधुर भगवन्नाम निकलता रहता था। प्रसंग पड़ने पर वह भगवद् सम्बन्धी ही परस्पर में बातें करता था। कुछ पूछने पर वह भगवान् के ही गुणों का बखान करता। बात चीतों में वह भगवन्नाम की ही महिमा गाता, चलते फिरते उसकी जिह्वा से भगवन्नाम का ही उच्चारण होता। कहने का मतलब यही है कि उसका जीवन भगवन्नाममय ही था। भगवन्नाम का और उसके शरीर का परस्पर में अत्यन्त ही घनिष्ट सम्बन्ध हो गया था।

संसारी लोग किसी रहस्यमयी घटना को जानने के लिये बड़े उत्सुक रहते हैं। पर्दे के भीतर चाहे कुछ भी न हो, किन्तु उनकी उत्सुकता पर्दे को देख कर बढ़ ही जाती है। इस साधु के भीतर कौनसी रहस्यमय बात छिपी हुई है, यह हमारी तरह गप शप क्यों नहीं करता, इसे हंसी दिल्लगी पसन्द क्यों नहीं है, यह पर निन्दा और पर चर्चा से इतनी दूर भागता क्यों है। ये ही प्रश्न लोगों के दिलों में इस साधु को देख कर उठते थे। अवश्य ही इसके दिलमें कोई भारी बात छिपी है। तभी तो यह किसी से बातें नहीं करता। इन्हीं सब बातों को सोच कर लोग उससे भान्ति २ के प्रश्न करते। वे बातों ही बातों में उसके मनोगत भावों को उगलवाना चाहते थे किन्तु भीतर कुछ थे ही कहाँ जो उगले जा सके। वही एक भगवन्नाम था, जिसे वह बिना कहे ही निरन्तर उगलता और निगलता रहता था। किन्तु संसारी लोगों की दृष्टि में भगवन्नाम का महत्व ही क्या। वह तो एक बहुत ही मामूली सी चीज है। उनकी दृष्टि

में सब से बड़ी दो ही चीजें हैं कामिनी और काँचन। इन दो में ही सम्पूर्ण सुख भरे हुए हैं। यही उनका विश्वास है। जो इन दोनों चीजों की निंदा करता है, संसारी लोग उससे जलते हैं। उनका जलना ठीक भी है। किसी के उपास्य देव शिवजी हैं, यदि कोई शिवजी की निन्दा करे तो शिव भक्त को उसके प्रति द्वेष स्वाभाविक हो ही। इसी लिये बहुत से लोग इस नवयुवक साधु से भी जलने लगे। उनके द्वेष का एकमात्र कारण यही था, कि यह साधारण से भगवन्नाम को ही सब कुछ समझता है और हम जिसे सब कुछ समझते हैं। उसकी यह उपेक्षा करता है।

(२)

मत्तेभकुम्भ दलने भुवि सन्ति शूराः।
केचित्प्रचण्ड मृगराज वधेऽपि दक्षा॥
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य।
कन्दर्प दर्प दलने विरला मनुष्याः॥

उन्मत्त हुए हाथी का अकेले ही पकड़ कर बल पूर्वक उसके मस्तिष्क को विदारण करने वाले पुरुष इस पृथ्वी पर मौजूद हैं। सिंह के पिछले दोनों पैरों को पकड़ निर्भयता के साथ बीच से चीर कर फेंक देने वाले पुरुष हमने अपनी आँखों से देखे हैं। किन्तु हम साहस के साथ बल पूर्वक कहते हैं, कि जिस के शरीर को शिवजी ने भस्म कर डाला है और जो अनंग होता हुआ भी प्राणियों के अंगों पर प्रहार करता रहता है उस परम पराक्रमी प्रबल शत्रु कन्दर्प के मद को चूर्ण करने वाले कोई विरले ही पुरुष होंगे। लाखों करोड़ों में खोजने से शायद कहीं निकल आवें उन महा भागों के चरणों में हमारा कोटि २ प्रणाम है।

मनुष्य के स्वभाव में कुछ ऐसी विचित्रता है। कि जिसके प्रति इसकी ईर्ष्या हो जाती है, उसे अपनी हानि करके भी दुःख पहुंचाने में सुख ही समझता है। अमुक आदमी नवता क्यों नहीं है, यही हमारे दुख का कारण हो जाता है और उसे नवाने और नीचा दिखाने के लिये हम बात पड़ने पर अपना सर्वस्व नाश कर सकते हैं और उस नाश में हमें आनन्द आता है।

शान्ति पुर के कुछ मन चले युवकों की भी इस साधु के प्रति ईर्ष्या हो गई। अब उनकी चर्चा का विषय यह नवागत साधु ही होगया। युवकों में इसी के सम्बन्ध की बातें होती। कोई कहता "तुम लोग तो वैसे ही उसके पीछे पड़े हो, वह बेचारा न किसी से कुछ कहता है न सुनता है। उसकी निन्दा करने से तुम्हें लाभ ही क्या है।"

दूसरा जल्दी से बोल उठता—"और क्या कहेगा उस नीच यवन का साहस तो देखो, हम सब ब्राह्मण वैश्यों के सिर पर लात रख कर साधु बना है। हमें तो वह साग भाजी भी नहीं समझता। यह हमारा घोर अपमान है।"

उसी समय दूसरा बोल उठा—"यह तो भाई तुमने बिलकुल ठीक बात कही। एक दिन मैंने उस से पूछा था। क्यों जी, तुम नीच जाति हो कर महामंत्र का जप क्यों करते हो? उस पर झट उसने श्रीमद्भागवत् का एक श्लोक बोल दिया और कहने लगा—"भगवान् के भजन करने वाले श्वपच को मैं चतुर्वेदी ब्राह्मण से श्रेष्ठ मानता हूं।" यह सुन कर मैं तो भैया, चुप हो गया। श्लोक तो मुझे आते ही नहीं जो उत्तर दूं।

इस पर एक अधेड़सा पुरुष दांत पीसकर बोला—"इन म्लेच्छों को भागवत् पढ़ा कौन देता है।"

इस बात से वहां के प्रायः सभी लोगों में उत्तेजना फैल गई। वही अधेड़ फिर बोला—"महीने दो महीने राम २ रटा और सिद्ध बन गये फिर

किसी को अपने बराबर समझते ही नहीं। कपड़े छोड़ देने से मानों त्यागीराज बन गये। कोलभील तो कभी कपड़े नहीं पहिनते। क्या वे सभी त्यागी हैं। कहीं रोटी का ठिकाना नहीं मिला तो भीख मांगने के लिये भजन का ढोंग बना लिया। अब बच्चे जी को गृहस्थी का मज़ा नहीं मिला है। भोजन न मिला तो कह दिया हम एकादशी व्रत है। घर में बहू होती तब बताते कितना भजन करता है। कोई प्यार करने वाली तो है ही नहीं चलो त्याग का ही ढोंग सही।

इतने में ही एक ज़मींदार का खूबसूरत सा लड़का बोल उठा-"भैया, तुम बिलकुल ठीक कह रहे हो। शशि को यह एक बार भी देखले तो सभी भजन ध्यान भूल जाय।

यह सुनते ही युवकों में कहकहा मच गया। सभी उस खूब सूरत युवक की ओर तिरछी निगाह से देखने लगे कुछ अश्लील व्यंग भी करने लगे। वह कुछ निर्भीक भी था और उसे अपने ज़मींदार होने का घमंड भी था, इसलिये उसने फिर कहना आरम्भ किया-"तुम सब तो दिल्लगी समझते हो। मैं सच कहता हूं, उसके देखने से इसकी सभी अकड़ चली जायगी और यदि उसने इसे अपने फाँसे में फंसा लिया तो फिर तुम चाहो तो इसकी हड्डी २ तोड़ सकते हो।"

इस पर उस अधेड़ने कहा-"वह वहां उस भिखारी के पास जाने ही क्यों लगी? वह तो उसकी ओर देखेगी भी नहीं।"

कुछ गर्व के साथ उस लड़ने कहा-"इसका ज़िम्मा मैं लेता हूं। वह तो सिरके बल जायगी। नगद नारायण की कृपा ऐसी ही होती है। वह तो पैसे की चेरी है। जहां उसे पैसे का लोभ दिया कि वह बुरी से बुरी जगह भी जा सकती है।

युवक की बात से सभी को प्रसन्नता हुई। सभी ने समझा कि अब साधु का भला नहीं है। जब कुँवर साहब उसके विरुद्ध खड़े हो गये तब उस बेचारे भिखारी की क्या ताब है। उस वेश्या को देख कर वह अपने आपे में रह ही न सकेगा। मौका पाकर हम उसकी खूब मरम्मत करेंगे। तब पूछेंगे "कहो जी, सिद्ध बाबा! अब सिद्धाई कहां गई। इसी के लिये यह सब ढोंग बनाया था क्या?"

सभी ने समझा बाज़ी मारली। वे अपनी काल्पनिक विजय पर मन ही मन प्रसन्न हुए। उस दिन की सभा विसर्जित हुई। कुंवर साहब के ज़िम्मे सब भार सौंप दिया गया। सभा की ओर से वे ही सर्वमान्य प्रतिनिधि बना दिये गये। कुंवर साहब भी उसे अपना ज़रूरी ही काम समझ कर तन मन धन से उसे सम्पन्न करने के निमित्त कटिबद्ध हो गये।

(३)

धन्यास्त एव तरलायत लोचनानाम्।
तारुण्य रूपवन पीन पयोधराणाम्॥
क्षामोदरोपरिलसत् त्रिवली लतानाम्।
दृष्ट्वाकृति विकृतिमेति मनो न येषाम्॥

वे मनस्वी, तपस्वी, यशस्वी और तेजस्वी महा पुरुष धन्य हैं, जिनका मन कमल लोचनी कामिनियों को देख कर विकार के लिये प्राप्त न होता हो। साधारण ललनाओं के रूप को देख कर संभवतया चित्त में चंचलता न हो, किन्तु भुक्त भोगी राजर्षि भर्तृहरि का कहना कुछ दूसरी ही तरह का है, वे कहते हैं-"सुदीर्घ कानों तक फैले हुए कमल के समान विकसित जिसके बड़े २ नेत्र हों, यौवन के गर्व से जो मदमाती बनी हो, सुदृढ़ और सुपुष्ट वक्षस्थल पर स्थित स्तनद्वय हों और अतिकृश उदर पर मनोहर त्रिवली पड़ी

हो ऐसी विधाता की सर्वोत्तमा अनुपमेया आकृति को देख कर जिनके मन में किसी प्रकार की भी हल चल पैदा नहीं होती, वे जगत् पूज्य हैं. संसार वन्द्य हैं, उनकी चरण धूलि से पापी भी पावन बन सकते हैं, ऐसे परम पावन पुरुषों के पादपद्मों में हमारा पुनः पुनः प्रणाम है।

शशिवाला यहाँ की नामी वेश्या थी, उसके अद्भुत रूप लावण्य की चारों ओर धूम थी। धन और यौवन के मद से उन्मत्त नवयुवक उसकी यौवन रूपी ज्योति के चका चौंध में पागल से हो कर पतंगे की तरह उसकी ओर टूट पड़ते थे और अपने धन धर्म और यौवन का सर्वनाश करते थे। उसे अपने रूप यौवन का गर्व था, फिर भी वह सती न होकर परयस्त्री थी, उसके सौन्दर्य का मूल्य चांदी की ठीकरियों पर बिक सकता था। जिसके लिये पात्रापात्र का विचार उसे नहीं करना पड़ता था। वह भूली हुई थी, जिसने उसे इतना मोहक रूप प्रदान किया है, उस दिव्य रूपों की निधि से वह अनभिज्ञ थी। जमींदार के पुत्र के पूछने पर उसने अवहेलना की हंसी हंस कर कहा "वह विचारा साधु चीज ही क्या है, एक निगाह में भी नहीं ठहर सकता।"

युवक ने उत्तेजना देने की नीयत से कहा "यही तुम्हारे इस रूप की परीक्षा है, यदि उसे तुम गिरा सकीं, तब हम समझेंगे कि तुम कुछ हो?

उसने उपेक्षा के स्वर में कहा-"हटाओ भी कैसी छोटी बात में मेरी परीक्षा लेते हो, वह तो तभी गिर गया था, जब तुमने इस काम के लिये मेरा स्मरण किया था, किन्तु इसके लिये इनाम क्या दोगे?"

युवकने कहा-"तुम उसे गिरादो और जो कहोगी वही तुम्हें इनाम दूंगा। कार्य पूरा होने पर मुँह मांगा इनाम पाओगी।

उसने विजयिनी की तरह जोर देकर कहा-"अच्छी बात है, मैं आज रात्रि में ही वहां जाऊंगी। कल प्रातःकाल ही आप को पता चल जायगा कि वह साधु कितने गहरे पानी में था।

युवक हां कह कर चला गया। शशि उसी सम्बन्ध में सोचने लगी। उसे विश्वास था, कि कोई भी मनुष्य क्यों न हो। जिससे मैं स्वयं जाकर पहिले ही से प्रणय की याचना करूंगी वह फिर चाहे एक बार देवदूत ही क्यों न हो, ना नहीं कर सकेगा। वह सोचती थी-"कोई बहुत बूढ़ा और अशक्त होता तो उसकी बात दूसरी थी, जिसने अभी अभी यौवनावस्था में पदार्पण किया है और जो शरीर से स्वस्थ है वह मुझ जैसी अनुपमेय सुन्दरी को देख कर अपने आपे में स्थिर रहा आवेगा यह हो ही नहीं सकता। बिलकुल असंभव है।" इसी प्रकार वह सायंकाल तक भाँति २ के मन सूबे बान्ध रही थी।

भगवान् भुवन भास्कर कमलों को संकुचित करके अस्ताचल के अचल में छिप गये। अष्टमी के टेढ़े निशानाथ अपनी धवलहंसी से संपूर्ण भुवन को प्रकाशित करते हुए आकाश मंडल में गमन करने लगे। शरद के वे आधे कुमुदिनी कान्त कामिनियों के हृदय में एक प्रकार के विचित्र भावों का संचार करने लगे। ऐसे ही समय में अपने सोलहों शृंगारों से सज धज कर शशि अपना उस भोली शिकार की फिराक में निकली। देवांगना की तरह अपने सौन्दर्य्य से दशों दिशाओं को विकसित करती हुई वह अकेली ही धीरे २ गंगा जी की ओर चली।

भगवती भागीरथी अपनी मन्द मन्द गति से बह रही थी, दो महीने पहिले जो इनकी चाल में

तीव्रता थी, उसकी अब शतांश भी तीव्रता नहीं है। लम्बे २ हरे २ कांसके वृक्षों पर बड़े २ लम्बे २ सफेद फूल खिल रहे थे, चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था, केवल निशानाथ की चकाचौंध ही चारों ओर बिखरी थी, उससे कांसों के फूलों की शुभ्रता और भी अधिक बढ़ गई थी। उस सन्नाटे में एक ही आवाज़ ज़ोरों से आरही थी, उस स्तब्धता को चीर कर।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

यही ध्वनि चारों ओर व्याप्त थी। कहने वाले का स्वर मधुर था। वाणी में करुणा थी और थी एक प्रकार की कमनीय कातरता। शशि कुछ देर तक खड़ी रह कर इस आवाज को सुनती रही। फिर कुछ साहस करके आगे बढ़ी। सामने ही उसने गंगा जी के टीले पर गुफा के सामने श्याम वर्ण के एक तेज पुंज कौपीन पहिने युवक साधु को देखा। तितिक्षा सहन करने के कारण उसका शरीर काला पड़ गया था, किन्तु चेहरे पर एक विचित्र प्रतिभा प्राप्त थी। इससे पहिले उसने इस साधु को कभी नहीं देखा था। उसकी तेज पुंज आकृति से ही उसका धैर्य्य कुछ२ शिथिलसा हो गया था, किन्तु रूप और यौवन का गर्व सभी गर्वों से बढ़ कर होता है। अतः वह अपने जगन्मोहन रूप के गर्व में उस साधु के सामने बैठ गई। साधु ने आँख उठाकर भी इसकी ओर नहीं देखा। वह पूर्व वत् ही जपता रहा।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

थोड़ी देर तक तो उसने समझा इसकी दृष्टि अभी मेरे ऊपर नहीं पड़ी है। अतः अपने नूपुरों की सुमधुर ध्वनि करने लगी, किन्तु साधु की मुद्रा में कोई भी अन्तर नहीं पड़ा। जैसे कोई बाग का माली सुन्दर सुन्दर पक्षियों की बोली से नहीं चौंकता और उन्हें सुनते हुए भी अन सुने की भान्ति समझता हुआ अपने काम में लगा रहता है, उसी तरह साधु अपने जप में ज्यों का त्यौंही बैठा रहा। एक बार आँख उठा कर उसने इसकी ओर देखा जरूर। किन्तु न उसने इससे बैठने को कहा और न जाने को, वह बिना ही कुछ कहे सुने अपनी धुनि में मस्त बना रहा। प्रमदा का मद चूर हुआ, उसकी आशा लता पर पालासा पड़ने लगा। बहुत देर जब बैठे २ हो गई तब उसने साहस करके कहा–"मैं एक बात कहना चाहती हूं।"

माला को पूरी करके उसने धीरे से कहा–"५० लाख नाम जप का मेरा नित्य का नियम है, उसे पूरा होने दो, तब जो कहना चाहो कहना।" इतना कह कर वह उत्तर की बिना ही प्रतीक्षा किये हुए:–

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

कह कर और अधिक जोर से जप करने लगा। जब वह बैठे २ आकुला जाती तब कहती "बस एक ही बात कहनी है।" इस पर वह हाथका का इशारा करते हुए "हुं" कह देता और फिर

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।

की रट लगाने लग गया–

[अपूर्ण]

लुभाते हैं।

(ले० श्री गंगा विष्णु पाण्डेय, विद्या भूषण "विष्णु")

मोरके मुकुट की लटक में अटक फिर।
दौड़कर भृकुटी कमान पै भुलाने हैं॥
नेत्र की मटक औ चटक पै उचट कर।
आके फिर नाक की बुलाक पै रिझाने हैं॥
कोमल कपोल की अमोललोल कांति पर।
दौड़ कर फिर मृदु हास में समाने हैं॥
चिबुक के चारों ओर चक्कर लगाते 'विष्णु'
मेरे नैन कृष्ण मुख चंद पै लुभाने हैं॥

योग-साधन

(ले० श्री स्वामी शिवानन्द जी)

४७८. अखण्ड ब्रह्म भाव को स्थिर रखने का प्रयत्न करो जितना अधिक हो सके इस अवस्था को बनाए रक्खो। इसमें स्थिति प्राप्त करो। सहजावस्था को प्राप्त हो जाओ। इस समय तुम्हारा यही जोश और पुरुषार्थ होना चाहिए। गत ६ मास में तुमने आध्यात्मिक ज्ञान में बहुत उन्नति करली है।

४७९. यदि स्वास भीतर लेने में 'स' का उच्चारण करना तुमको कठिन मालूम देवे तो तुम 'रा' अहं, ओं, या शिवका उच्चारण कर सकते हो। श्वास बाहर निकलते समय तुम मा, ब्रह्म, म, या हुम उच्चारण कर सकते हो सा-अहम् सो हम्। स का अर्थ है वह। अहं, मैं हूं। वह मैं हूं। यह सोहम् का अर्थ है। इससे जीव और परमात्मा की एकता प्रतीत होती है।

४८०. वेदान्त हमारे दिलके गुप्त कोष में, हड्डियों में, और नाड़ियों में प्रविष्ट होजाना चाहिए। मोह चाहे, पुत्र, स्त्री, पुत्री, इष्टमित्र किसी के साथ हो तोड़ देना चाहिए। जो कुछ तुम्हारे पास है वह सबकी सम्पत्ति होनी चाहिए। यही वास्तविक वेदान्त है। मैं याचक वेदान्त में विश्वास नहीं रखता। यह एक मात्र मक्कारी है। योग भी सच्चा वेदान्त मनुष्य का बहुत उंचा उठा सकता है और उसको अजर अमर अभय बना सकता है।

४८१. वेदान्त का प्रयोजन गुलामी नहीं है। वेदान्त सबको स्वतंत्रता देता है। यह सबको आश्रय देता है। यह उपनिषदों का ज्ञान है। यह परम हंस संन्यासियों का धर्म है।

४८२. जहाँ रूप है वहां बन्धन है, यह बिलकुल सत्य है परन्तु आत्मा सदैव नाम और रूप से परे है। इस बातको भले प्रकार समझलो कि 'तुम वही हो'। संन्यासी बल पूर्वक ॐ तत् सत् कहते हैं।

४८३. शान्ति प्राप्त करने के लिए मौनव्रत निश्चय पूर्वक उत्तम सधन है। इससे तुमको शक्ति प्राप्त होगी। मौन से काम चेष्टा, क्रोध आदि पर विजय प्राप्त होगी।

४८४. कभी यह भावना मत करो "मैं तुच्छ हूं" इन मिथ्या विचारों को दूर करो। सिंह की भान्ति वीर बनो। सदैव प्रसन्न रहो। निश्चय करके तुम आत्मा हो। यह शरीर तो केवल छिलके की तरह है जो फेंक दिया जावेगा आत्मा को कोई कष्ट नहीं देसकता। अपने आपको कौन दुःख देसकता है। गुरु गोविन्दसिंह जी की भान्ति विचरो। संकोच को दूर करदो, स्त्री भाव को निकाल डालो। बल पूर्वक भाषण करो। १००८ गायत्री मंत्र का नित्य भाव सहित जप करो।

४८५. ऐसे आदमियों का संग कभी मत करो

जिनसे चित्त बिलकुल घृणा करता है। एकान्त वास करो, कभी बदला मत लो जब लोग तुम्हारी हंसी करे या तुमको गालियाँ दें तो चुप हो जाओ। एक ज्ञानी की भान्ति मुसकरा दो। अपनी शक्ति का परिचय दो। ऐसे स्थानों में जाकर निवास करो जहां तुम्हारा अपमान होता है, इससे तुम्हारे अन्दर शक्ति आजावेगी। ऐसा करने से तुम्हारा अहंकार शीघ्र नष्ट हो जावेगा।

४८६. माया अनेक रूपों में अपना काम करती है। यह सन्यासियों को भी नहीं छोडती। इच्छा ही माया है। इच्छा अनेक रूपों में प्रगट होती है। यदि सन्यासी काम और लालच पर विजय प्राप्त कर लेता है तो वह नाम और कीर्ति के पीछे दौड़ता है। यश और कीर्ति इच्छा का दूसरा रूप है। यदि सन्यासी अपने पुत्रों का मोह छोड़ देता है तो वह अपने आश्रम और चेलों का मोह करने लगता है। माया बड़ी छलिया है इसलिए मेरे प्यारे जिज्ञासुओ! इससे सावधान रहो।

४८७. बहुत सी वेदान्त की पुस्तकें चित्त सुद्धी आदिकों के पढ़ने से क्या लाभ है। इन पुस्तकों से तुमको ब्रह्म का नशा हो जावेगा। आज कल वेदान्त पर बहुत बातें बनाई जाती हैं। लोग समता और एकता की बहुत चर्चा करते हैं परन्तु फिर तुच्छ पदार्थों के लिए लड़ते दिखाई देते हैं। वह ईर्षा, द्वेष से पूर्ण है। वह अत्यन्त नीच और तुच्छ जीव है। मैं क्या विचार करूं मैं तो ऐसी बातें देख कर स्तब्ध हो जाता हूं॥

४८८. मेरा तो व्यावहारिक वेदान्त में विश्वास है। मैं तो आध्यात्मिक अभ्यास में श्रद्धा रखता हूं। मेरा तो यह विश्वास है कि सांसारिक स्वभाव को पूर्ण रूप से परिवर्तित कर देना चाहिए। हमको बिलकुल अभय हो जाना चाहिए। यही आध्यात्मिक जीवन का चिन्ह है। अधिक शब्दों की आवश्यकता नहीं है। अधिक तर्क, वाद विवाद, स्वाध्याय और भ्रमण करने की जरूरत नहीं है। ओ३म् में निवास करो, सत्य में वास करो और एक स्थान पर रहो। शान्त गुहा में प्रवेश कर जाओ। महा मौनी बन जाओ। ब्रह्म महा मौनी है। चुप रहने में ही शान्ति है।

४८९. मनुष्य अपने प्रारब्ध का आप निर्माता है। मार्कण्डे १४ वर्ष की आयु में मरने वाला था परन्तु अपने पुरुषार्थ से चिरजीवी बन गया। वशिष्ठ जी कहते हैं कि पुरुषार्थ ही परं देव है। अपने प्रारब्ध के तुम स्वयं ही निर्माता हो और पुरुषार्थ द्वारा तुम स्वयं ही इसे छिन्न भिन्न कर सकते हो। यदि तुमको तिरछे अक्षर लिखने का स्वभाव हो गया है तो दूसरे ढंग से अभ्यास करने से सीधे लिख सकते हो। तिरछा लिखना प्रारब्ध है और सीधा लिखना पुरुषार्थ है।

४९०. सामान्य अग्नि प्रत्येक स्थान पर है। यह ईन्धन और वृक्ष सब में छिपी हुई है। वह व्याप्त और अशक्त है। वह रगडने से प्रकाशित होता है। इसी प्रकार आत्मा सब जगह व्याप्त है। वह अव्यक्त है। निरन्तर ध्यान द्वारा यह प्रकाशित होता है। यह अनुभव करना होगा।

४९१. जब तुम अंधेरे मे होते हो और कोई आदमी तुमको आवाज़ देता है "यहाँ कौन है" ? तुम स्वाभाविक उत्तर देते हो "मैं हूं" साथ ही तुम ये भी कहते हो मेरा अमुक नाम है इससे यह बात स्पष्ट प्रतीत होती है कि तुम आत्मा हो। मेरा अमुक नाम है यह तो मानसिक सृष्टि है यह तो चित्त का अध्यास है जैसे की रस्सी में सांप का अध्यास है। अहं से तात्पर्य आत्मा या ब्रह्म है।

४९२. यदि तुम दूसरों का मान करते हो और तुम्हारा स्वभाव इतना नम्र है जितनी कि घास की पत्तियां। यदि तुम इतने सहन शील हो जितने कि वृक्ष तो सन्यासी बनने के योग्य हो। तब ही तुम सच्चे वैरागी और वैष्णव कहला सकते हो। जब ऐसी अवस्था हो जावे तो मेरे पास आओ मैं तुमको अधिक शिक्षा दूंगा।

४९३. तुम आत्मा को किस तरह प्रत्यक्ष कर सकते हो? सत्य, तपस्या, सम्यक-ज्ञान और ब्रह्मचर्य द्वारा तुम आत्मा को प्रत्यक्ष कर सकते हो।

४९४. आत्मा कहाँ रहता है? हृदय में महल है, महल में सरोवर है, सरोवर में कमल है जिसमें १२ पंखड़ी है, कमल में धरा काश (चिदाकाश) इस धराकाश में स्वयं ज्योति स्वरूप आत्मा निवास करता है। इसको वहाँ खोजना चाहिए। इसी आत्मा में दत्तात्रय जी और शंकराचार्य जी शान्ति पूर्वक निवास करते थे।

४९५. एक नृत्य करने वाली स्त्री अपने शिर पर घड़ा रख कर नृत्य करती है और वह अनेक प्रकार के हाव भाव दिखाती हुई अपनी चित्त वृत्ति को घड़े में लगाए रहती है इसी प्रकार एक सच्चा शुद्धात्मा अपने समस्त काम करता हुआ परमात्मा के आनन्द दायक चरणों में अपना ध्यान रखता है।

४९६. उपनिषदों के महावाक्यों पर विचार पूर्वक ध्यान करो "अहं ब्रह्मास्मि" "तत्वमसि" ऐसा करने से ज्ञान की प्राप्ति हो जावेगी। यदि ऐसा करने में असमर्थ हो तो कृष्ण, शिव या देवी की उपासना करो। यदि तुम उपासना भी करने में असमर्थ हो तो तुमको निष्काम कर्म्म करना चाहिए। यदि यह करने में भी असमर्थ हो तो हरि का नाम स्मरण करो। यदि तुम ऐसा करने में भी असमर्थ हो तो इस पंचभौतिक शरीर को शीघ्र छोड़ दो और भगवान से प्रार्थना करो कि तुमको नवीन उत्तम शरीर होवे।

४९७. अहं भाव को त्याग दो, और ममता का नाश करो। आत्मा में वास करो। ऐसा अभ्यास करने से इसी जीवन में जीवन मुक्त का आनन्द अनुभव कर सकोगे।

४९८. विदेह मुक्ति भी जीवित रहते ही प्राप्त की जा सकती है। राजा जनक विदेह कहलाते थे। जब तुम सप्त भूमिका में पहुंच जाओगे तो तुम शीर ज्ञान से ऊपर चले जाओगे और तुम विदेह हो जाओगे। जड़ भरत भी विदेह थे। इन उच्च कोटि के ज्ञानियों की अवस्था किस तरह वर्णन की जा सकती है। दक्षिण भारत का सदाशिव ब्रह्म भी विदेह था।

४९९. मनोमय कोश वाणी से परे है। बुद्धि मन से भी परे है। अहंकार बुद्धि से परे है। आत्मा अथवा कूटस्थ जीवचैतन्य से परे है। आत्मा से परे कुछ नहीं है। आत्मा परिपूर्ण है।

५००. अगर तुम शरीर ज्ञान अथवा शरीर अध्यास से उच्च तर पद पर पहुंच जाओ और अगर शरीर के विचार को छोड़सको और यदि तुम्हारा मन केवल आत्मा में सलंग्न हो जावे तब ही तुम निःसन्देह सुखी, शान्त व मुक्त हो॥

५०१. बादल जो सूर्य की किरणों द्वारा उत्पन्न होते हैं वह सूर्य को आच्छादित कर देते हैं। एवमेव यह असत्य मायामय अहंकार आत्मा से उत्पन्न हुआ भी आत्मा को ढांप लेता है।

५०२. काई जो जल से उत्पन्न होती है जल को आवृत कर देती है इसी प्रकार यह अहंकार जो आत्मा से उत्पन्न होता है आत्मा को आवृत कर देता है।

५०३. जिस प्रकार काई व कमल दोनों ही जल

से उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार गुण व दोष दोनों ही परमात्मा व प्रकृति से उत्पन्न होते हैं।

५०४. जिस प्रकार अमृत व विष दोनों समुद्र से उत्पन्न हुए हैं उसी प्रकार साधु व असाधु दोनों प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं॥

५०५. पुनः जिस प्रकार संखया मनुष्य को मारने, व औषधि रूप में रोग दूर करने की सामर्थ रखता है उसी प्रकार गुण व दोष दोनों एक ही प्रकृति के गुण हैं। जहां सुख है वहां दुःख भी है। जहां भलाई है वहां साथ २ बुराई भी मौजूद होती है। यदि कहीं सन्त विद्यमान है तो वहां दुष्ट का होना भी संभव है। यदि एक स्थान पर धर्म परायण पतिव्रता सति साध्वी मौजूद है तो कुलटा असाध्वी स्त्री का अस्तित्व भी अवश्य है। अतः निराश होकर निन्दा मत करो। भगवान् की गति को समझो और बुद्धिमान व गम्भीर बनो॥

५०६. जिस पकार नमक जल में मिल कर जल में मौजूद होते हुए भी अदृष्य होता है जिस प्रकार इन्धन में अग्नि मौजूद होते हुए भी नज़र नहीं आती पुनः जिस प्रकार घृत दुग्ध में मौजूद होते हुवे भी छिपा हुवा है उसी प्रकार यह आत्मा अर्थात् जगदात्मा सर्वत्र सब में ओत प्रोत होने पर भी नाम रूपादि उपाधियों में छुपा हुवा है॥

५०७. जिस प्रकार एक स्त्री परदे के छिद्रों में से सब को देख सकती है परन्तु, उसको कोई नहीं देख सकता उसी प्रकार परमेश्वर सब को देख सकता है परन्तु उसको कोई नहीं देख सकता। किन्तु उसको ज्ञान चक्षुओं द्वारा देखा जा सकता है।

५०८. ग्रामोफून के रिकार्डस् में जिस प्रकार शब्द अन्तर्गत है अर्थात् छिपा हुआ है। और जिस प्रकार गन्ध फूल की कलियों में छिपी हुई रहती है। जिस प्रकार सूरज बादलों में अग्नि धुएं में सोना पत्थर में तेल तिलों में मन दिमाग में उसी प्रकार परमात्मा इस शरीर तथा अन्य सब वस्तुओं में छिपा है।

५०९. जिसप्रकार एक मनुष्य अपने निजस्थान पर साधारण सुखद वस्त्र अर्थात् एक कुर्ता और और एक अधो वस्त्र मात्र ही पहनता है लेकिन बाहर जाने के समय कालर, टाई, पतलून, टोपादि पहनता है उसी प्रकार यह निर्गुण ब्रह्म निर्विशेष अर्थात् गुणों से रहित होता है जब के वह अकेला होता है। परन्तु जगद् रचना के समय वह इन मायामय नाम रूपादिकों का वस्त्र धारण कर भक्तों के पवित्र ध्यान के हेतु सगुण ब्रह्म बन जाता है। अहो भगवान् की दया अपार है। वह दया व प्रेम का सागर है।

५१०. "मैं वह आत्मा अथवा ब्रह्म हूं जो एक है चिदाकास है अखण्ड है व सर्व भूतान्तरात्मा है।" इस 'भाव' में बड़े प्रयत्न से स्थिति उपलब्ध करो तब ही मन की चंचलता क्षय होगी। तब ही अनन्त सुख अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति होगी। और तब तुम जीवन मुक्त हो जावोगे इसमें किंचिन्मात्र भी संशय नहीं है।

५११. प्राण अन्न को पचाता है, इसको रक्त में परिवर्तित करता है, और उसको दिल व दिमाग में पहुंचाता है। तब ही मन विचार शक्ति के योग्य बनता है और ब्रह्म विचार कर सकता है।

५१२. यह सर्वान्तरात्मा पुत्र से भी प्रिय है धन, स्त्री आदिक सभी वस्तुओं से अधिक मूल्य वान है क्योंकि यह सब वस्तुओं से परे सब को परा काष्ठा और सब में अधिक प्रिय है।

५१३. अतः इस आनन्द स्वरूप आत्मा को खोजना चाहिये यह आत्मा ज्ञान स्वरूप है आत्मा का सार ज्ञान और मुक्ति है। आत्मा का सार रूप

ज्ञान और आनन्द है। इसे कहाँ तालाश करोगे इसे अपने हृदयाकाश में तालाश करो। इसे बड़ी सावधानी से बड़े उत्साह, प्रेम, धैर्य और दृढ़ता से तालाश करो। विघ्न संशय और मिथ्याज्ञान अर्थात् 'मैं शरीर हूं' इत्यादिक का परिहार करो।

५१४. सद्गुरु अर्थात् अध्यात्मिक उपदेष्टा ब्रह्म उपदेश दो प्रकार से करते हैं। ब्रह्म परिपूर्ण है सच्चिदानन्द है यह विधिमुख उपदेश कहलाता है। ब्रह्म न छोटा है और न बड़ा है यह निषेध-मुख उपदेश कहलाता है विधिमुख उपदेश की अपेक्षा निषेध मुख उपदेश अधिक श्रेष्ठ है।

५१५. जिस तरह एक पिता अपने पुत्र को बताता है कि 'यह दिवान है राजा नहीं है, यह तहसीलदार है राजा नहीं है, यह मैनेजर है राजा नहीं है।" उसी तरह गुरु अपने शिष्य को उपदेश करता है कि "यह शरीर है आत्मा नहीं है, यह प्राण है आत्मा नहीं है, यह मन है आत्मा नहीं है, यह कारण शरीर है आत्मा नहीं है। अन्त में वह सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा को बताता है जो शरीर, प्राण व मन से परे है। यही निषेध मुख अध्यात्म उपदेश है इस प्रकार से ही शिष्य पर अधिक प्रभाव पड़ता है तथा सुगमता से लक्ष्य की प्राप्ती हो जाती है। जो अश्रुधारा विरहाग्नि के कारण भक्त की आंखों से बहती है वह भक्ति की वृद्धि में सहायक होती है। यह भक्ति का अत्या-वश्यक अंग है। जो भगवद् प्रेम के लिये अनिवार्य है। मीरां बाई, तुकाराम आदि महात्माओं की आँखों से भगवत् प्रेम के कारण अनावृत अप्रतिहत अश्रुधारा वह निकलती थी।

श्रुति-सार

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु यथाकालं चाहुतयोह्याददायन्। तन्नयन्त्येताः सूर्य्यस्य रश्मयो यत देवानां पतिरेकोऽधिवासः

निश्चय करके उक्त प्रकाशमान अग्नि की जिह्वाओं में नियत समय पर जो अग्नि होत्र करता है यह आहुतियें ग्रहण करती हुई सूर्य की किरणें होकर वहां पहुंचाती हैं जहाँ पर देवताओं का पति इन्द्र एक अधिपति होकर वर्तमान है॥ १॥

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः सूर्य्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति। प्रिया वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः॥ २॥

प्रकाश वाली आहुतियें मधुर वाणी बोलती हुई सत्कार पूर्वक आइये २ इस तरह कहती हुई सूर्य की किरणों द्वारा उस यजमान को ले जाती हैं कि यह तुम्हारा पवित्र शुभ कर्म का फल रूप ब्रह्म लोक है॥ २॥

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म। एतच्छ्रेयो येभिनन्दन्ति मूढा जरामृत्युं ते पुनरेवापियन्ति॥ ३॥

निश्चय करके ये पूर्वोक्त यज्ञरूप नौकायें जो तरने के साधन कथन किये हैं अदृढ़ हैं जिन में सोलह ऋत्विज यजमान और उनकी पत्नी कथन किये हैं जो अविवेकी पुरुष इन को श्रेष्ठ मान कर प्रसन्न होते हैं वह निश्चय करके जरा और मृत्यु को पाते हैं॥ ३॥

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयंधीराः पण्डितम्मन्यमानाः जंघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः॥

अविद्या में वर्तमान अपने आप को धीर और पण्डित मानने वालों का निरन्तर क्लेश होता है मूर्ख लोग अन्धे के पीछे चलने वाले अन्धे जैसे दुःख भोगते हैं वैसे ही अविद्यान्धकार में पड़े हुए अविवेकी पुरुष चारों ओर से क्लेश को पाते हैं ॥४॥

अविद्यायां बहुधा वर्त्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः । यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्च्यवन्ते ॥ ५ ॥

बालक अज्ञानी पुरुष अविद्या में बहुत प्रकार से वर्तमान हुए हम कृतार्थ हैं यह मानते हैं जिस कारण कर्मी लोग फल में राग के कारण उसके परिणाम को नहीं जानते ॥ ५ ॥

इष्टापूर्त्तं मन्यमाना वरिष्ठं नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः । नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेनुभूत्वेमं लोकं हीनतरं चाविशन्ति ॥ ६ ॥

धन तथा सांसारिक मोह रूप अज्ञान से युक्त पुरुष इष्टयागादि और आपूर्त्त बावड़ी कूप-तड़ागादि कर्मों को श्रेष्ठ मानते हुए इसके अतिरिक्त अन्य कोई कल्याण का मार्ग नहीं जानते हैं वह स्वर्ग के ऊपर अपने किये हुये कर्मों को अनुभव करके इस लोक को और इस से भी अधिक नर्क लोक को प्राप्त होते हैं ॥ ६ ॥

तपः श्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्यां चरन्तः । सूर्यद्वारेण ते विरजा प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ ७ ॥

जो पुरुष शान्त चित्त वाले विद्वान् भिक्षा से अपनी वृत्ति करते हुए वन में अथवा एकान्त देश में रह कर तप और श्रद्धा का सेवन करते हैं वे निष्पाप हो कर (सूर्य द्वारेण) ज्ञान द्वारा वहाँ जाते हैं जहाँ निश्चय करके वह मृत्यु से रहित अव्ययात्मा पुरुष है ॥ ७ ॥

परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन । तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ॥ ८ ॥

ब्रह्म विद्या का अधिकारी कर्म से प्राप्त होने वाली अवस्था की परीक्षा करके वैराग्य को प्राप्त होवे क्योंकि कार्य रूप कर्मों से नित्य शुद्ध बुद्ध ब्रह्म नहीं प्राप्त होता उसके विज्ञानार्थ वह जिज्ञासु हाथ में समिधा लेकर वेद वेत्ता ब्रह्म परायण गुरु को भी प्राप्त हो ॥ ८ ॥

तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक् प्रशांतचित्ताय शमान्विताय । येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्वतो ब्रह्मविद्याम् ॥९॥

शान्त चित्त वशीभूत मन वाला शास्त्रोक्त विधी से आये हुए उक्त शिष्य के लिए वह विद्वान् आचार्य भले प्रकार जिस विद्या से वह अविनाशी और अविकारी पुरुष जाना जाता है उस ब्रह्म विद्या का यथोक्त रीति से उपदेश करे ॥ ९ ॥

इति प्रथम मुण्डक द्वितीयः खण्डः ।

अथ द्वितीय मुण्डके प्रथमः खण्डः ।

तदेतत्सत्यं यथा सुदीप्तात्पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवन्ते सरूपाः । तथाक्षरात् विविधाः सौम्य ! भावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति ॥ १ ॥

वह पूर्वोक्त अक्षर ब्रह्म सत्य है जैसे प्रदीप्त हुई अग्नि से उसके समान रूप वाले सहस्रों विस्फुलिङ्ग (चिङ्गारे) उत्पन्न होते हैं वैसे ही हे सोम्य! अपर ब्रह्म से बहुत प्रकार के भाव उत्पन्न होते हैं और उस ही में लय हो जाते हैं ॥ १ ॥

दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः। अप्राणोह्यमना शुभ्रो ह्यक्षरात्परतः परः ॥ २ ॥

निश्चय से दीप्ति वाला है, अमूर्त है, सर्वव्यापक। है वह बाहर और प्रत्येक पदार्थ के मध्य में है, जिस लिये निश्चय करके उत्पत्ति से रहित है, इस लिए प्राणों से रहित है, मन से रहित है। अतः प्रकाश स्वरूप है, पर अक्षर प्रकृति से भी परे है ॥ २ ॥

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च। खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ॥ ३ ॥

उस ब्रह्म से प्राण मन सब इन्द्रियें और उनके विषय आकाश वायु अग्नि जल विश्व के धारण करने वाली पृथिवी उत्पन्न हुई ॥ ३ ॥

अग्निर्मूर्द्धा चक्षुषी चन्द्रसूर्य्यौ दिशः श्रोत्रे वाग्विवृताश्च वेदाः। वायुः प्राणो हृदयं विश्वमस्य पद्भ्यां पृथिवी ह्येष सर्वभूतान्तरात्मा ॥ ४ ॥

इस ब्रह्म का अग्नि मुख है चन्द्रमा और सूर्य चक्षु हैं, दिशायें श्रोत्र हैं ऋगादिवेद उस की वाणी हैं और सब ब्रह्माण्ड गत वायु प्राण है सर्व संसार (जगत) हृदयस्थानीय है, पृथिवी पादस्थानीय है निश्चय करके यह सब भूतों का अन्तरात्मा है ॥४॥

इति द्वितीय मुण्डके प्रथमः खण्डः

अथ द्वितीय मुण्डके द्वितीय खण्डः

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः। क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ॥ ८ ॥

उस पारावर ब्रह्म के जानने पर हृदय की आविद्यक ग्रन्थि भेदन हो जाती हैं सर्व संशय नष्ट हो जाते हैं और उसके कर्म क्षय को प्राप्त हो जाते हैं ॥ ८ ॥

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्। तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ॥ ९ ॥

उस ज्योतिमय हृदय कोष तमोगुण से रहित निरवयव ब्रह्म विराजमान है, वह शुद्ध है सूर्य चन्द्रादि ज्योतियों का भी ज्योति अर्थात् प्रकाशक है। वह जो है उस को आत्मवेत्ता जानते हैं अन्य कोई नहीं ॥ ९ ॥

न तत्र सूर्य्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः। तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ ७ ॥

उस ब्रह्म में सूर्य प्रकाश नहीं करता चन्द्रमा और तारा गण भी प्रकाश नहीं करते न यह बिजलियें उसका प्रकाश करती हैं यह भौतिकाग्नि कहां प्रकाश कर सक्ता है, उसही स्वयं प्रकाश के पीछे सब प्रकाशित होते हैं उसी के प्रकाश से सब तेजोमण्डल प्रकाशित होता है, स्वयं नहीं ॥ १० ॥

ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण। अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ॥ ८ ॥

पूर्वोक्त यह अमृत रूप ईश ही है, पहले ईश था, अन्त में ईश ही शेष रहेगा। दक्षिण की ओर

और उत्तर की ओर, नीचे और ऊपर भी यह ही विस्तृत अर्थात् फैला हुआ है यह विश्व अति श्रेष्ठ ईश ही है ॥ ११ ॥

इति द्वितीय मुण्डके द्वितीयः खण्डः ।

अथ तृतीय मुण्डके प्रथमः खण्डः ।

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते । तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्योऽभिचाकशीति ॥ १ ॥

(द्वा) दो (सुपर्णा) पक्षी (सयुजा) साथ मिले हुए (सखाया) मित्र से हैं और (समान) अपने समान वृक्ष को (परिषस्वजाते) सब ओर से आश्रय किए हुए हैं (तयो) उनदोनों में से (अन्य) एक तो (पिप्पलं) फल को (स्वादुः) स्वादु मान कर (अत्ति) खाता है और (अन्यः) दूसरा (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभिचाकशीति) साक्षी मात्र है ॥ १ ॥

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः । जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ॥

प्रकृति माया रूप वृक्ष में, पुरुष अज्ञान से निमग्न है, प्रकृति की आवर्णात्मक शक्ति से मोह को पाया हुआ शोक करता है । जब योगी सद्गुरुओं से युक्त ईश्वर को अपने से भिन्न देखता है और इस की महिमा को देखता है तब शोक से मुक्त हो जाता है ॥ २ ॥

यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् । तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति ॥ ३ ॥

जब उपासक स्वयं प्रकाशक विश्व के कर्ता सर्व शक्ति सम्पन्न सर्वोपरि ईश को देखता है तब यह ईशवेत्ता पुरुष पुण्य और पाप को दूर करके 'निरंजन' ईशको मिलता है ॥ ३ ॥

प्राणो ह्येष यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन् विद्वान्भवते नातिवादी । आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः

निश्चय करके यह जीव रूप है जो सब भूतों से सुशोभित अर्थात् दीखता है उस को जानता हुआ विद्वान् पुरुष मिथ्या बोलने वाला नहीं होता ऐसा पुरुष आत्मा में क्रीड़ा करने वाला आत्मा में राग वाला आत्म विषयक अनुष्ठान वाला होता है और ईशवेत्ताओं में श्रेष्ठ कहा जाता है ॥ ४ ॥

सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानं च ब्रह्मचर्येण नित्यम् । अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ॥ ५ ॥

इस शरीर के मध्य में प्रकाश स्वरूप शुद्ध यह आत्मा निश्चय करके सत्य से यथार्थ ज्ञान से ब्रह्मचर्य रूप तप से सर्वदा प्राप्त होता है उसको निश्चय करके जिनके अविद्यादि दोष क्षीण होगये हैं ऐसे साधन सम्पन्न यति पुरुष उनको देखते हैं ।

भजन

मैं सुनी तुम्हारी बात मेरा मन अटका,
तुम दीजो दर्शन अपने मार मुकुट का ॥टेक॥
तेरी सांवरी सूरत माधुरी मूरत प्यारी,
मेरे नैनन में बस रही टरे नहीं टारी ।
अब कीजो वेग सहाय मोर मैं भारी,

तोहे बार २ लिख भेजे रुक्मणि नारी।
अब कीजो कोई काम श्याम झपट का ॥ १ ॥
मैं तुमरे कारण हुई श्याम बेहाला,
मेरी बिनती सुनियो श्याम सुन्दर गोपाला।
तेरी बितवन ने गोपाल लाल घर घाला,
मोहे घरि पल छिन नहीं चैन सुनो नन्द लाला।
अब पर्दा तुमरे हाथ मेरे घूँघट का ॥ २ ॥
ये नैना प्यारे तेरे दर्श के प्यासे,
मेरी कौन सुने ये विथा कहु मैं कासे।
मोहे रैन दिना लग रही श्याम तेरी आसे,
तैंने डारे गलबिच प्रेम प्रीति के पासे ॥
या शिशुपाला का आन मिटाओ खटका ॥ ३ ॥
अब विष्णु प्रभु मथुरा के वासी आवो,
इस रुक्मणि को निज दासी जान अपनाओ।
इस शिशुपाला को अपना बल दिखलाओ,
सब शत्रु सैन संहार मुझे ले जाओ ॥
तू अन्तर्यामि आप सभी घट २ का ॥ ४ ॥

२

मेरे मन प्रेम लग्यो हरी तीर तीर तीर ॥ टेक ॥
हरि दर्शन को मेरो मन बहुत तपत है,
ज्यूँ तृषावन्त बिन नीर नीर नीर ॥
हमरी वेदना हरि प्रभु जाने,
मेरे मन अन्दर की पीर पीर पीर ॥
मेरे हरि प्रीतम की कोई बात सुनावे,
सो भाई सो मेरा बीर बीर बीर ॥
रलमिल सखी गुण गाओ मेरे प्रभु के,
ले सत्गुरु मति धीर धीर धीर ॥
जन नानक की प्रभु आश पुजावो,
हरि दर्शन सन्त शरीर शरीर ॥

३

राम मिलनरो घणो छै उमावो,
नित उठ जोऊं बाटडियां ॥ टेक ॥
दर्शन बिन मोहे कल न पड़त है,
नींद न आवे रातडियां ॥ १ ॥
नैन दुखी दर्शन को तरसें,
नाभिन बैठे सांसडियां ॥ २ ॥
रैन दिवस यह आरत मेरी,
कब हरि राखें पासडियां ॥ ३ ॥
लागी लगन छूटन की नाहीं,
अब क्यों कीजे आंटडियां ॥ ४ ॥
मीरां के प्रभु गिरधर नागर,
पूरो मनरी आसडियां ॥ ५ ॥

४

अजन मनावत हार परी मेरी माई ॥ टेक ॥
राधे तू बड़ भागिनी कौन तपस्या कीन्ह।
तीन लोक के नाथ हरि सो तेरे आधीन ॥
शिव विरंची नारद निगम जाकी लहत न डीठ।
ता हरि से प्यारी राधिके दे है बैठा पीठ ॥
अहो लड़ैते दृग किये पढ़े लाल बे हाल।
कहुं मुरली कहुं पीत पट कहुं मकुट बनमाल ॥
बिछुवे होय सो फिर मिले, रूसे लेह मनाय।
मिली रहे और ना मिले तासों कहा बसाय ॥
तनक सुहागो डालकर जड़ कंचन पिघलाय।
सदा सुहागन राधिके क्यों न कृष्ण ललचाय ॥
मान कियो तैं भली करी कैसो तेरो मान।
जैसो मोती ओस को तैसो तेरो मान ॥
तू चट ते मट हो नहीं उन मोहे लैन पठाई।
नन्द नन्दन को आव महातम अपनो राख बड़ाई ॥
ठोड़ी हाथ दै चली दूतिका तिरछी भौंह चढ़ाई।
"परमानन्द" प्रभु करुंगी दुलहैया ते रम्बार कीजाई ॥